

**DDCE Utkal University**

**हिंदी (एम.ए.)**

**M.A. (Hindi)**

**PAPER - XX**

**Certified that Syllabus & Courses of  
Study have been prepared  
According to the UGC guidelines**

**DDCE UTKAL UNIVERSITY**

**M.A. (Hindi)**

**PAPER - XX**

**हिंदी भाषा का विकास और बोलियाँ**

**लेखक  
ज्योति मिश्र**

# DDCE UTKAL UNIVERSITY

M.A. (Hindi)

PAPER - XX

## COURSES OF STUDY

### हिंदी भाषा का विकास और बोलियाँ

- Unit - I** हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास एवं मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ और उनकी विशेषताएँ (पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, मागधी, शौरसेनी)
- Unit - II** हिंदी का भौगोलिक विस्तार, हिन्दी की उपभाषा और बोलियों का सामान्य परिचय
- Unit - III** हिन्दी की बोलियाँ :  
राजस्थानी,  
ब्रज,  
अवधी,  
भोजपुरी

#### अंक विभाजन :

|     |                     |                    |
|-----|---------------------|--------------------|
| तीन | आलोचनात्मक प्रश्न   | $12 \times 3 = 36$ |
| तीन | लघूत्तरी प्रश्न     | $8 \times 3 = 24$  |
| दो  | टिप्पणी मूलक प्रश्न | $5 \times 2 = 10$  |

---

|              |      |
|--------------|------|
| कुल          | =70  |
| सत्रीय कार्य | = 30 |
| <hr/>        |      |
| कुल अंक      | 100  |

## UNIT - I

**हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास,  
मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा  
और उनकी विशेषताएँ  
(पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, मागधी, शौरसेनी)**

**इकाई की रूपरेखा :**

- 1.1 उद्देश्य
- 1.2 प्रस्तावना
- 1.3 प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ
  - 1.3.1 वैदिक संस्कृत
  - 1.3.2 लौकिक संस्कृत
- 1.4 मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ
  - 1.4.1 पालि
  - 1.4.2 प्राकृत
  - 1.4.3 शौरसेनी
  - 1.4.4 मागधी
  - 1.4.5 अपभ्रंश

## Unit - I

### हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास, मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा

#### 1.1 उद्देश्य :

इस इकाई में प्राचीन भारतीय आर्य भाषा में वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, मध्यकालीन आर्य भाषा, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश के विकास के साथ-साथ आधुनिक युग में हिंदी के विकास और साहित्यिक भाषा के रूप में उसके उद्भव की चर्चा की गई है। इस विकास क्रम में उर्दू के विकास के साथ-साथ हिंदीतर भाषाओं का विकास क्रम भी जुड़ता है। इस इकाई में हमने हिंदी भाषा के विकास क्रम को वैदिककाल से देखने का प्रयास किया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद :

- \* वैदिक युग के शुरू से ही हिंदी के विकास का क्रम समझ सकेंगे ;
- \* हिंदी भाषा के विकास में अनार्य जातियों के योगदान का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर सकेंगे ।
- \* विभिन्न युगों में साहित्यिक भाषा का उद्भव और विकास बता सकेंगे ;
- \* मध्यकालीन आर्यभाषा पालि, प्राकृत और अपभ्रंश की ध्वन्यात्मक और व्याकरणात्मक विशेषताओं का परिचय प्राप्त कर सकेंगे ;
- \* साहित्यिक भाषा के रूप में खड़ीबोली के विकास की चर्चा के साथ-साथ हिंदीतर भाषा की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ;

#### 1.2 प्रस्तावना :

मानव भाषा के माध्यम से अपने विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। भाषा मनुष्य मात्र की विशेषता है। भारत में हम कई भाषाएँ बोलते हैं - हिंदी, तमिल, बंगला, मणिपुरी, आसामी, आदि। ये भाषाएँ किस रूप में एक-दूसरे सम्बद्ध हैं; यह जानने के लिए इसके प्राचीन इतिहास को जानने की आवश्यकता है। हिंदी भाषा और साहित्य का विकास क्रम प्रायः समान्तर चलता है। प्राचीनकाल (सन् 1300ई. से सन् 1500ई. तक) उस समय अपभ्रंश तथा प्राकृतों का प्रभाव

हिन्दी भाषा पर मौजूद था, साथ ही हिन्दी की बोलियों के निश्चित अथवा स्पष्ट रूप विकसित नहीं हुए थे । मध्यकाल (सन् 1500 ई. से 1800 ई.) तक अब हिन्दी उक्त प्रभाव से मुक्त हो गई थी और हिन्दी की बोलियाँ विशेष कर ब्रज और अवधी अस्तित्व में आ गई थीं । यह बात विचारणीय है कि हिन्दी की सभी बोलियाँ अपने-अपने क्षेत्र में विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम रही हैं । कवियों की रुचि और प्रतिभा के अनुसार अलग-अलग युगों में अलग-अलग बोलियाँ साहित्यिक भाषा के रूप में उभरकर सामने आई हैं । आदिकाल में राजस्थान की मारवाड़ी बोली, भक्तिकाल में तुलसीदास ने अवधी का एवं कृष्णभक्त कवियों ने ब्रजभाषा का प्रयोग किया । भक्तिकाल के पूर्व विद्यापति ने स्थानीय बोली मैथिली में अपने काव्य का सृजन किया । रीतिकाल में ब्रजभाषा का वर्चस्व रहा । इस प्रकार अलग-अलग समय में अलग-अलग बोलियों में साहित्य का सृजन हुआ । आधुनिककाल (सन् 1800 से अब तक) में हिन्दी की बोलियों के रूपों का परिवर्तन प्रारंभ हो गया । तथा साहित्यिक प्रयोगों की दृष्टि से खड़ी बोली ने हिंदी की अन्य बोलियों को दबा दिया । अमीर खुसरो ने खड़ी बोली में काव्य रचना की थी । कबीरदास ने भी ज्यादातर खड़ी बोली हिंदी का इस्तेमाल किया था । खड़ी बोली में कोई प्रमुख कवि नहीं हुआ और न कोई विशिष्ट धारा खड़ी बोली में विकसित हुई । खड़ी बोली साहित्य रचना न होने का एक प्रमुख कारण शायद उर्दू का विकास भी हो सकता है । मुगल साम्राज्य की स्थापना के साथ ही उर्दू भाषा का विकास होने लगा । यह भाषा दक्षिण में जाकर दखिनी और उत्तर में जाकर रेखता के नाम से प्रचलित हुई । और इस प्रकार उर्दू एक साहित्यिक भाषा के रूप में सामने आई । भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से उर्दू और हिंदी एक है ; किन्तु आधुनिक युग में अंग्रेजों ने अनेक राजनैतिक कारणों से उर्दू को हिंदी से अलग देखने का प्रयास किया । और हिंदी कवियों ने भी साहित्य में खड़ी बोली का प्रयोग किया । यही कारण है कि खड़ी बोली में साहित्य की रचना केवल आधुनिककाल में ही हमारे सामने आती है ।

इस इकाई में हिंदी के विकास क्रम में हम उसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में ही देखने का प्रयास करेंगे ।

## **हिंदी भाषा का उद्भव और विकास :**

यद्यपि भाषा-विज्ञान का अध्ययन क्षेत्र अत्यधिक व्यापक हो गया है और इसके आरंभ काल से लेकर आज तक भाषा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने पर्याप्त प्रकाश डाला है, तथापि भाषा के उद्भव की कहानी आज भी भाषा विज्ञान के लिए रहस्यमयी बनी हुई है । संसार की कौन सी भाषा आदिभाषा थी और उससे किन-किन भाषाओं का किन-किन रूपों में विकास हुआ यह आज भी अनिर्णीत है । अनुमान के आधार पर भाषा के उद्भव के सम्बन्ध में भाषा वैज्ञानिकों ने कुछ

प्रारंभिक प्रयास किए हैं और वे ही आज भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन के आधार बने हुए हैं। भाषा किसी एक व्यक्ति से उत्पन्न नहीं हुई है, वरन् यह एक विशाल जन समूह की वाणी का सामान्य प्रतिफलन है। इस प्रकार भाषा समाज की वाणी का समवायी प्रारूप है। ऐसी स्थिति में किसी भी भाषा का अविर्भाव काल को या उद्भव को एक निश्चित सीमा रेखा पर नहीं माना जा सकता। यही बात हिन्दी के पक्ष में भी सत्य है।

भाषा सम्पर्क पर आधुनिक भाषा विज्ञान व्यापक अध्ययन प्रस्तुत करता है। ऐतिहासिक, राजनीतिक, भौगोलिक और सामाजिक कारणों से जब भाषाएँ एक-दूसरे के सम्पर्क में आती हैं तो उनमें एक-दूसरे के बीच आदान-प्रदान के साथ एक-दूसरे को प्रभावित करने और एक-दूसरे से प्रभावित होने की प्रक्रिया भी चलती रहती है।

हिन्दी का इतिहास वस्तुतः वैदिक काल से प्रारंभ होता है। उससे पहले आर्यभाषा का स्वरूप क्या था इसका कोई लिखित प्रमाण नहीं मिलता। साथ ही भारत में आर्यों का आगमन किस काल से हुआ इसका भी कोई प्रमाण नहीं मिलता। साधारणतया यह माना जाता है कि 2000 से 1500 ई. पूर्व भारत के उत्तर पश्चिम सीमांत प्रदेश में आर्यों के दल आने लगे। यहीं पहले से बसी हुई अनार्य जातियों को परास्त कर आर्यों ने सप्त सिन्धु, जिसे हम आधुनिक पंजाब के नाम से जानते हैं, देश में आधिपत्य स्थापित कर लिया। यहीं से वे धीरे-धीरे पूर्व की ओर बढ़ते गए और मध्यदेश, काशी, कोशल, मगध, विदेह, अंग, बंग तथा कामरूप में स्थानीय अनार्य जातियों को पराभूत करके उन्होंने वहाँ अपना राज्य स्थापित कर लिया। इस प्रकार समस्त उत्तरापथ में अपना राज्य स्थापित करने के बाद आर्य संस्कृति दक्षिणापथ की ओर अग्रसरित हुई और युनानी राजदूत मेगास्थनीज के भारत आने तक आर्य संस्कृति सुदूर दक्षिण में फैल चुकी थी। आर्यों की विजय केवल राजनीतिक विजय मात्र नहीं थी। वे अपने साथ सुविकसित भाषा एवं यज्ञ परायण संस्कृति भी लाए थे। उनकी भाषा एवं संस्कृति भारत में प्रसार पाने लगी, किन्तु स्थानीय अनार्य जातियों का प्रभाव भी उस पर पड़ने लगा। मोहन जोदड़ो एवं हड़प्पा की खुदाइयों से सिन्धु घाटी की जो सभ्यता प्रकाश में आई है, उससे स्पष्ट है कि यायावर पशुपालक आर्यों के आगमन से पूर्व सिन्धु घाटी सभ्यता का बहुत अधिक विकास हो चुका था। अतः यह सम्भव है आर्यों की भाषा, संस्कृति एवं धार्मिक विचारों पर अनार्य जाति की संस्कृति एवं संपर्क का पर्याप्त प्रभाव पड़ा होगा। अनार्य जातियों के योगदान के कथन से तात्पर्य यह नहीं है कि हिन्दी अथवा प्राकृतों में जो कुछ है वह आर्यों की ही भाषाओं से लिया गया है अथवा आर्यों की सारी संपत्ति प्राकृतों और हिंदी को प्राप्त हो गयी। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि युग-युग की भाषा में यहाँ तक कि वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत में भी बहुत से अनार्य तत्व सम्मिलित थे। भारत में तथा भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक अनार्य जातियाँ

रहती थीं जिनमें निग्राटु, किरात, ऑस्ट्रिक या निषाद तथा द्रविड़(दस्यु) का प्रसार बहुत व्यापक था । निग्राटु अनार्य जाति का आगमन अफ्रिका से अवश्य हुआ किन्तु वे समुद्री तट के आस-पास के क्षेत्रों में रहे और वहीं से दक्षिण पूर्वी द्वीपों की ओर निकल गए । मध्यदेश के लोगों से उनका संपर्क नहीं हो पाया । वैदिक साहित्य में इनका कोई प्रमाण नहीं मिलता । किरात पहाड़ी लोग थे जिनके वंशज आज भी हिमालय प्रदेश के पश्चिम से पूर्व तक फैले हुए हैं । इन लोगों का आर्यों के साथ संपर्क हुआ । फलस्वरूप इनके बीच संस्कृतियों और भाषाओं का आदान-प्रदान भी हुआ । यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध और किन्नर आदि पहाड़ी जातियों की संस्कृति परवर्ती आर्य साहित्य में भरपूर मिलती है । इन्हीं के देवताओं, इनकी पूजा विधि, विश्वासों अन्धविश्वासों के साथ-साथ, मणियों, पर्वतीय फल-फूलों, पशु-पक्षी, उपजों के नाम इन जातियों से ग्रहण किए गए । आग्नेय या निषाद जातियाँ पंजाब के पूर्व में बसी थीं । इनकी संस्कृति ग्रामीण थी और कृषि इनका प्रधान कर्म था । आर्यों ने इन्हीं से कृषि कर्म सीखा और उस कर्म में प्रगति की । क्योंकि अधिकांश आर्य जातियाँ मध्य एशिया के पहाड़ी प्रदेश में रहती आ रही थीं । नावें चलाना और मछली पकड़ना भी इन निषाद जातियों का प्रमुख व्यवसाय था । हाथी पालने और साधने में ये निपुण थे । भारतीय इतिहास आर्य 'अरब' अपेक्षा आग्नेय 'हाथी' का जो इतना अधिक महत्व रहा उसका भी यही कारण है । वर्तमान समय में भी राजस्थान, मध्यप्रदेश, बिहार, बंगाल, ओड़िशा, असम और उत्तरप्रदेश के पहाड़ी इलाकों में मुंडा, सांथाल, कोल, हो, शबर, खासी, मानखमेर कुंकू, भूमिज आदि अनेक आदिम जातियाँ फैली हुई हैं जिसकी भाषा, बोली और शब्दावली का तलदेश की बोली से सीधा संपर्क रहा ।

द्रविड़ कुल की जातियाँ सांस्कृतिक दृष्टि से सबसे अधिक उन्नत रहीं । फलस्वरूप भारत में आर्यों का प्रसार सरलतया संपन्न नहीं हुआ । उनको अनेक प्राकृतिक एवं मनुष्य कृत बाधाओं एवं विरोधों का सामना करना पड़ा । मोहन जोदड़ो, हड़प्पा आदि की खुदाइयों और बलोचिस्तान में प्राप्त ब्राहुई नाम की द्रविड़ भाषा के अवशेषों को देखकर इतिहासकारों का यह निश्चित मत है कि सिन्धु सौविर आदि प्रदेशों में द्रविड़ जातियों का प्राबल्य था, जिनसे आर्यों को कठिन संघर्ष करना पड़ा । प्रसार के इस कार्य में अनेक शताब्दियाँ लग गईं, इस काल क्रम में भाषा भी स्थिर नहीं रह सकी, उसके रूप में परिवर्तन विवर्तन होता गया । जैसे भारतीय आर्य भाषा में टवर्गीय ध्वनियाँ अनुकरणात्मक शब्दावली, प्रत्ययों, कर्मवाच्य में अतिरिक्त क्रिया, वाक्य योजना के कुछ तत्व द्रविड़ से आए हैं । इस प्रकार इन द्रविड़ संस्कृति, जाति -जनजातियों की संस्कृतियों के अलावा समय-समय पर शक, हूण, मंगोल, तुर्क, चीनी, अरब, शान आदि अनेक जातियाँ यहाँ आईं और यहाँ की सभ्यता और संस्कृति में घुलमिल गईं । इन सबने भारतीय भाषाओं(हिंदी) के निर्माण और विकास में अपना योगदान दिया ।



विकास क्रम की दृष्टि से भारतीय आर्य भाषा को तीन कालों में विभाजित किया गया है -

1. प्राचीन - भारतीय - आर्य - भाषा (वैदिक -संस्कृत-लौकिक -संस्कृत) 1500ई. पूर्व से 500 ई. पू. (1000 वर्ष)
2. मध्यकालीन आर्य भाषा (पालि-प्राकृत) 500 ई.पू. से 1000ई. (1500वर्ष) यद्यपि इससे पहले भी प्राकृतें थी ।
2. आधुनिक भारतीय आर्य भाषा - 1000 से अब तक ।  
(हिंदी और हिंदीतर बंगला, गुजराती, मराठी, सिंधी, पंजाबी आदि ।)

### 1.3 प्राचीन भारतीय आर्य भाषा :

आर्यों के भारत आगमन के समय इनकी भाषा ईरानी से अधिक भिन्न नहीं थी । भारत में आने वाले आर्यों के दल अपने साथ अपनी सुविकसित भाषा और यज्ञ-परायण संस्कृति भी लेकर आए । अगर हम प्राचीन ईरानी संस्कृति की ओर ध्यान दें तो मालूम पड़ता है कि भारत में प्रवेश करने से पूर्व ही आर्यों में इन्द्र, मित्र, वरुण आदि देवताओं की उपासना प्रचलित थी । भारत में बस जाने पर यज्ञों के विधि-विधान में विकास होता गया । आर्य कृषि देवताओं की प्रशंसा में सूक्तों की रचना करते रहे । यह सूक्त परम्परागत रूप से कृषि परिवारों में सुरक्षित रखे जाने लगे । बाद में विभिन्न कृषि परिवारों में सूक्तों का संग्रह किया गया । यह संग्रह ऋग्वेद संहिता के रूप में हुआ है । यज्ञों के विकास के साथ-साथ वैदिक वाङ्मय में विशेष वृद्धि होती गई । वैदिक साहित्य के अन्तर्गत तीन विभाग हैं -1) संहिता, 2) ब्राह्मण, 3) उपनिषद् । संहिता भाग में ऋक्संहिता के अतिरिक्त यजुः संहिता, साम संहिता, एवं अथर्व संहिता हैं । यजु -संहिता में यज्ञों के कर्मकाण्ड में प्रयुक्त मंत्र संग्रहीत हैं । इसके मंत्र यज्ञों में प्रयोग के क्रम से रखे गए हैं और पद्य के साथ-साथ गद्य में भी अनेक मंत्र इसमें उपलब्ध होते हैं । 'यजुः -संहिता कृष्ण एवं शुक्ल इन दो रूपों में सुरक्षित है । कृष्ण यजुर्वेद संहिता में मंत्र भाग एवं गद्यमय व्याख्यात्मक भाग साथ-साथ संकलित किए गए हैं, परंतु शुक्ल यजुर्वेद संहिता में केवल मंत्र भाग संग्रहित है । 'सामवेद संहिता' में सोम यागों में गाये जाने वाले सूक्तों को गेय पदों के रूप में सजाया गया है । इसके अधिकांश सूक्त ऋग्वेद संहिता से लिए गए हैं । 'अथर्ववेद' में जनसाधारण में प्रचलित मंत्र-तंत्र , टोटे - टोटकों का संकलन है । इसकी सामग्री 'ऋक्संहिता' की जैसी प्राचीन है परंतु चिरकाल तक 'वेद' के रूप में मान्यता प्राप्त न होने के कारण इसकी भाषा का प्राचीनतम रूप सुरक्षित नहीं रह सका ।

ब्राह्मण भाग में कर्मकांड की व्यवस्था की गई है और इसी प्रसंग में अनेक कथाओं की भी योजना की गई है । प्रत्येक वेद के अपने -अपने ब्राह्मण ग्रंथ हैं । ऋग्वेद के प्रधान ब्राह्मण ग्रंथ

‘ऐतरेय ब्राह्मण’ है। इसका रचनाकाल अनुमानतः 1000ई. पूर्व है। ब्राह्मण ग्रंथों में यह सबसे प्राचीन है। ‘सामवेद’ के ब्राह्मण ग्रंथों में ‘पंचविंश ब्राह्मण’ विशेष उल्लेखनीय हैं। ‘शतपथ ब्राह्मण’ ‘शुक्ल यजुर्वेद’ का ब्राह्मण भाग है। तैत्तिरीय ब्राह्मण कृष्ण यजुर्वेद का ब्राह्मण ग्रंथ है। इन ग्रंथों की रचना गद्य में हुई है। ‘उपनिषद्’ ब्राह्मण ग्रंथों के परिशिष्ट भाग हैं। इनमें वैदिक मनीषियों के आध्यात्मिक एवं परमार्थिक चिंतन के दर्शन होते हैं। इनमें आर्यों के ज्ञानकाण्ड का उदय एवं विकास हुआ। इन ग्रंथों की भाषा अत्यन्त सरल प्रवाहमयी एवं हृदयग्राहिणी है।

भारत में प्रवेश करने वाले आर्यों के विभिन्न दलों की भाषा में कुछ-कुछ भिन्नता अवश्य थी परन्तु उनमें साहित्यिक भाषा का एक सर्वमान्य स्वरूप विकसित हो गया था। इसी साहित्यिक भाषा में ‘ऋग्वेद’ के सूक्तों की रचना हुई। सूक्त ग्रंथों के रचनाकाल का समय लगभग 700ई.पू. है। इसमें भाषा के विकसित रूप (साहित्यिक रूप) के दर्शन होते हैं। इसी भाषा का उत्तरी रूप अपेक्षा कृत परिनिष्ठित एवं पंडितों में मान्य रूप था। इस रूप को पाणिनि ने पाँचवीं शताब्दी में नियमबद्ध किया जो हमेशा के लिए लौकिक संस्कृति का सर्वमान्य आदर्श रूप बन गया। दीर्घकाल तक ये सूक्त श्रुति परम्परा से कृषि परिवारों में सुरक्षित रखे जाते रहे। परन्तु जैसे-जैसे सूक्तों की भाषा से बोलचाल की भाषा की भिन्नता बढ़ती गई वह और दुर्बोध होने लगी, वैसे-वैसे इसके प्राचीन रूप को सुरक्षित रखने के लिए संहिता के प्रत्येक पद को संधि रहित अवस्था में अलग-अलग कर पदपाठ बनाया गया तथा ‘पद-पाठ’ से ‘संहिता-पाठ’ बनाने के नियम निर्धारित किए गए और प्रत्येक वेद की विभिन्न शाखाओं के ‘प्रातिशाख्यों’ की रचना हुई। ‘प्रातिशाख्यों’ में अपनी-अपनी शाखा के अनुरूप वर्ण-विचार, उच्चारण - विधि, पदपाठ से संहिता बनाने की विधि आदि विषयों पर पूर्ण रूप से विचार किया गया। पाणिनि द्वारा संस्कृत भाषा को व्याकरण के नियमों में बाँध दिए जाने पर बोलचाल की भाषा, प्राकृत तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं के रूप में विकास करती चली गई। आगे चल कर संस्कृत भाषा बोलचाल की भाषा न रहने पर भी कुछ परिवर्तित होती रही, जिसकी झलक रामायण, महाभारत, पुराण -साहित्य और कालिदास के काव्यों में मिलती है। इस प्रकार प्राचीन आर्य भाषा के दो रूप हैं - वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत।

### 1.3.1 वैदिक संस्कृत :

इसकी काल सीमा 1500ई.पू. से 500 ई.पू. है। इसके अन्य नाम हैं - प्राचीन संस्कृत, वैदिकी, वैदिक संस्कृत तथा छान्दस। इस भाषा का प्रयोग वैदिक साहित्य, संहिताओं, ब्राह्मण ग्रंथों, आख्यानों तथा प्राचीन उपनिषदों में हुआ है। इन सभी ग्रंथों में भाषा का उत्तरोत्तर विकसित रूप देखने को मिलता है। फिर भी ध्वन्यात्मक और व्याकरणिक समानताएँ इन ग्रंथों की भाषा को एक ही भाषा का रूप देती हैं। वास्तव में हिन्दी के विद्यार्थी को जिस वर्णमाला से परिचित कराया

जाता है वह वास्तव में प्राचीन भाषा की है । विद्वानों ने वैदिक भाषा को बोलचाल की भाषा के अत्यन्त निकट होने का अनुमान लगाया है । इसका भाषाशास्त्रीय रूप इस प्रकार है -

1. **ध्वनियाँ** - मूल योरोपीय भाषा की तुलना में प्राचीन भारतीय आर्य भाषा में स्वरों की संख्या कम हो गई । समान स्वरों में |अ| आ| इ| ई| उ| ऊ| ऋ| लृ । और सन्ध्यक्षरों में | ए | ऐ | ओ | औ | पाए जाते हैं । विसर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, श और | ष | आदि कुछ नई ध्वनियाँ आ गईं ।

योरोपीय भाषा की ध्वनियाँ वैदिक भाषा में निम्नलिखित रूप में विकसित हुई हैं -

| 2.     | योरोपीय भाषा            | वैदिक भाषा |
|--------|-------------------------|------------|
| स्वर - | अ   ह्रस्व ए, ओ, न्, म् | आ          |
|        | आ   दीर्घ ए, ओ, न्, म्  | आ          |
|        | इ, ऋ                    | इ          |
|        | ई                       | ई          |
|        | उ, ऋ                    | उ          |
|        | ऊ, लृ                   | ऊ, लृ      |
|        | अइ, एइ                  | ए          |
|        | अउ, एउ, ओउ              | ओ          |
|        | आइ, एइ, ओइ              | ऐ          |
|        | आउ, एउ, ओउ              | औ          |

3.. यह भाषा श्लिष्ट योगात्मक आकृति की थी । भाव विस्तार को सूत्र शैली के तथा श्रुति पाठ के शुद्ध उच्चारण पद-पाठ, क्रम- पाठ आदि रूपों में सुरक्षित रखा गया है । मूल भारोपीय भाषा इस काल में विकास के पथ पर अग्रसरित थी । लौकिक संस्कृत तक आते -आते वह विकास बहुत आगे बढ़ गया । इस काल की भाषा मूल भारोपीय भाषा से कुछ बातों में अन्तर रखती है ।

1. इस काल में पहले की अपेक्षा स्वरों की संख्या कम हो गई थी । ह्रस्व | अ | ए | और | ओ | ध्वनियों के स्थान पर | अ | का प्रयोग होने लग गया था । इसी प्रकार दीर्घ | अ | ए | और | ओ | का स्थान | आ | ने ग्रहण कर लिया था । इसी प्रकार मूल ह्रस्व एवं दीर्घ अर्द्धव्यंजन | न | म | के स्थान पर भी | अ | और | आ | प्रयुक्त हुए हैं ।

2. इस काल में तेरह स्वर ध्वनियाँ -। अ। आ। इ। ई। उ। ऊ। ऋ। लृ। ए। ओ।  
। ऐ। औ। ही रह गई। प्रातिशाख्यों में इनमें प्रथम नौ को समानाक्षर और  
अन्तिम चार को सन्ध्यक्षर नाम दिया गया है। सन्ध्यक्षरों में ए। ओ। गुण।  
तथा। ऐ। औ। वृद्धि स्वर हैं।
- 3.। ऐ। और। औ। के मूल रूप। आइ। और। आउ। है। सन्धि में ये ही  
। आय। और। आव। में परिणत हो जाते हैं।
4. मंत्रकाल में। अ। का उच्चारण विवृत (Open) होता था। परन्तु प्रातिशाख्यों में  
चल कर यह ह्रस्व संवृत स्वर के रूप में बोला जाने लगा था। इसका मुख्य कारण  
स्वरों की शुद्ध उच्चारण स्थिति ही था। इस काल में उदासीन स्वर भी प्रायः लुप्त  
हो गए थे। उसके स्थान पर 'इ' की आवृत्ति हो गई थी।
- 5.। ऋ। और। लृ। का उच्चारण आजकल के उच्चारण से भिन्न था।
6. छन्द की लय को ठीक करने के लिए। र। से संयुक्त व्यंजन के बीच अति ह्रस्व  
स्वर का आगम आवश्यक था। इस स्वर आगम को स्वरभक्ति नाम से जानते हैं।

## स्वराघात :

मूल भारोपीय भाषा के संगीतात्मक स्वराघात से मात्रिक तथा गुणिक अपश्रुतियों का विकास हुआ। इस प्रकार इस भाषा परिवार के विघटन के समय दो प्रकार का स्वराघात था - उदात्त तथा स्वरित। साथ ही भारत में बसने वाले ईरानी परिवारों में अनुदात्त का भी विकास हो गया था, फलस्वरूप वैदिक भाषा को परंपरा के रूप में उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित तीन प्रकार के संगीतात्मक स्वराघात प्राप्त हुए। जो क्रमशः उच्चारण में उच्च, निम्न तथा मध्यम वर्ग के द्योतक थे। स्वराघात की स्थिति क्रमशः ह्रास की ओर थी। वैदिक साहित्य में स्वराघात उच्चारण का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान था। बिना स्वराघात के वैदिक ऋचाओं का उच्चारण नहीं किया जाता था और स्वर की अशुद्धि से अर्थ का अनर्थ हो जाता था। स्वरयुक्त ध्वनि उदात्त के स्वरहीन अनुदात्त तथा उदात्त से अनुदात्त में ढलने वाली स्वरध्वनि स्वरित कहलाती है। स्वरपरिवर्तन से अर्थ- परिवर्तन हो जाता है। स्वर परिवर्तन से पद की प्रकृति या प्रत्यय अथवा विभक्ति में स्वर -परिवर्तन दिखाई देता है। इसको भाषावैज्ञानिक अपश्रुति कहते हैं। संस्कृत के व्याकरणिक इस प्रवृत्ति को 'गुण', 'वृद्धि' एवं 'सम्प्रसारण' नाम से जानते हैं। प्राचीन काल में स्त्रियों और शूद्रों को वेदों के अध्ययन का अधिकार इसलिए नहीं दिया गया था कि क्योंकि इनके द्वारा स्वराघात के नियमों का पालन संभव नहीं होगा, ऐसा समझा गया था। स्वरों की अशुद्धि से अर्थ का अनर्थ हो जाता है, इस संबंध में यास्क ने निरुक्त

में कहा है - “स्वर अथवा वर्ण की अशुद्धि मंत्र को हीन तथा निरर्थक बना देती है । अशुद्ध स्वर वाली वाणी बज्र बनकर यजमान का ठीक उसी प्रकार नाश कर देती है, जिस प्रकार ‘इन्द्रशत्रुः’ पद में स्वराघात (तत्पुरुष के स्थान पर बहुव्रीहिसमास) की अशुद्धि के कारण वृत्रासुर का नाश हो गया । इसके अतिरिक्त स्वराघात को अर्थ -द्योतन में भी सहायक माना गया है ।

## 1. व्यंजन ध्वनियाँ :

इस काल में मूल भारोपीय भाषा की व्यंजन ध्वनियाँ अधिकांश में सुरक्षित रही हैं । ‘ट’ वर्ग का प्रवेश भारतीय आर्य भाषाओं की अपनी विशेषता है । व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण स्थान के अनुसार पाँच वर्ग ‘क वर्ग(कंठ्य), ‘च वर्ग’ (तालव्य), ‘त वर्ग’ (दन्त्य), ‘प वर्ग’ (ओष्ठ्य) ‘ट वर्ग’ मूर्धन्य) हैं । इनके अतिरिक्त चार अर्द्ध स्वर ‘य् । र् । ल् । व् । तथा तीन ऊष्म ध्वनियाँ । श् । ष् । स् । एक महाप्राण । ह् । तथा अनुनासिक । ँ । है । इसके अतिरिक्त तीन ध्वनियाँ विसर्जनीय हैं - (h): जिह्वामूलीय h ( ~ ) (h) एवं उपाध्यानीय (h) जो अपने विशिष्ट चिन्हों से जानी जाती है ।

## 2. नासिक्य ध्वनियाँ :

ये ध्वनियाँ पाँच हैं । ज् । ङ् । ण् । न् । म् । इनमें । न् । और । म् । ही पद में किसी भी स्थान पर प्रयुक्त होते दिखाई देते हैं । शेष तीन पद आरंभ में प्रयुक्त नहीं हुए हैं । । ज् । तथा । ण् । तो पदान्त में भी नहीं आते । एक शुद्ध नासिक्य ध्वनि है जिसे ‘अनुस्वार ’ कहा जाता है । स्वर ध्वनि से पूर्व वह नासिक्य ध्वनि । ँ । अनुनासिक कही जाती है तथा व्यंजन से पूर्व इसे ‘अनुस्वार’ कहते हैं और इस रूप । ँ । में लिखते हैं । यह अनुस्वार पद के अन्त में साधारणतया । म् । और कभी-कभी । न् । का रूप धारण करता है ।

3. योरोपीय । र् । प्राचीन भारतीय आर्य भाषा में भी । र् । तथा । ल् । के स्थान पर । र् । ही मिलता है ।

## शब्द रूप :

1. शब्दों में व्यंजन ज्यों के त्यों रहे । मध्यकाल तक आते -आते लोप की प्रवृत्ति देखने को मिलती है । इस काल में शब्द के दो विभाग मिलते हैं । अजन्त (स्वरान्त) और हलन्त(व्यंजान्त) इन शब्दों में तीन लिंग, तीन वचन और आठ कारक थे । प्रत्येक शब्दों के आठों कारकों, तीनों वचनों, तीनों लिंगों के रूप ‘रूप प्रत्यय’ जोड़ने से सिद्ध होते हैं ।

2. प्रातिपदिक में भिन्नता का कारण स्वराघात का स्थान परिवर्तन रहता है । सर्वनाम स्थान में प्रातिपदिक ह्रस्व हो जाता है । बहुधा यह देखने में आता है कि प्रातिपदिक सुप्रप्रत्यय के मध्य कोई व्यंजन -ध्वनि आ जाती है । शब्दों की रूप-रचना प्राचीन काल से ही जटिल रही है । और कुछ अधिक विकल्प मिलने के कारण अनियमित कही जाती है । लौकिक संस्कृत तक यह नियमितता अधिक बढ़ी है ।

3. शब्दों में धातु का अर्थ सुरक्षित रहा है । वैदिक भाषा में धातु रूपों के तीन वचन, तीन पुरुष, दो बाच्य, चार काल(लट् । लङ् । लुङ् । लिट्) तथा पाँच भाव (। निर्देश । अनुज्ञा । संभावक । अभिप्राय । तथा । निबंधी।) हैं ।

4. रूप रचना - वैदिक भाषा में विशेषणों के रूप भी संज्ञा के रूपों के समान चलते थे । इस भाषा में तुलना के लिए प्रयुक्त प्रत्यय - तर । तम । इयास । तथा । इष्ट । भी भारोपीय मूल भाषा के ही प्रत्ययों से विकसित हुए हैं ।

5. मूल भारोपीय भाषा में सर्वनाम के प्रातिपदिक बहुत अधिक थे, इसका कारण यह है कि पहले सभी मूलों के सभी रूप बनते थे, किन्तु कालान्तर में मिश्रण के कारण अनेक मूलों के अनेक रूप लुप्त हो गए और फिर विभिन्न मूलों से बने रूप एक ही मूल के रूप माने जाने लगे । इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वनामों के पीछे अनेक रूपों की परंपरा है जो मूल भारोपीय भाषा तक चली गई है ।

6. वैदिक भाषा में धातु रूप तीन पदों । आत्मनेपद । परस्मैपद । और । उभयपद । में चलते थे । कुछ धातुएँ परस्मैपदी और कुछ आत्मनेपदी थीं । तो कुछ उभयपदी थीं । क्रिया के तीन पुरुष, तीन वचन और दस लकार । कालसूचक । रूप थे । वैदिक भाषा का लोट् लकार लौकिक संस्कृत में लुप्त हो गया ।

क्रिया रूपों की रचना धातु और प्रत्यय के बीच विकरण जोड़कर की जाती थी । इस विकरण की दृष्टि से धातुएँ दस गणों में विभक्त थीं । वैदिक भाषा में समास की प्रवृत्ति मूल भारोपीय भाषा से विकसित है । भाषा में प्रायः दो शब्दों के ही समास मिलते हैं ।

प्राचीन आर्य भाषा में धातुओं में लगने वाले कृत् प्रत्ययों और धातुओं से भिन्न शब्दों अर्थात् संज्ञा, विशेषण, सर्वनाम में लगने वाले तद्धित प्रत्ययों की संख्या कई सौ थी । शब्द निर्माण की इतनी भारी सामर्थ्य के कारण ही संस्कृत बहुत समृद्ध और उन्नत भाषा बन गई थी और उसकी इसी सामर्थ्य से आज तक अनेक भाषाओं को लाभ हो रहा है । वैदिक भाषा में उपसर्ग क्रिया से अलग स्वतंत्र शब्दों के रूप में भी प्रयुक्त होते थे । वैदिक भाषा में असमापिका (पूर्वकालिक) क्रिया तथा क्रिया विशेषण के भी विविध रूप हैं । वैदिक में आज्ञार्थक रूप । धि । हि । आन । तात् । आम् । तम् ।

ताम् । त् । अथाम् । आदि कई विभक्ति -चिन्हों से बनते थे । संस्कृत में ये कम हो गए । तुमुनन्त रूप भी वैदिक में बहुत अधिक थे, संस्कृत में एक -दो रह गए ।

### **शब्द भंडार :**

वैदिक भाषा में एक तो अनेक मूल शब्दों से विकसित रूप प्रयुक्त होने लगे । दूसरा आर्येतर भाषाओं के अनेक शब्दों को भी ग्रहण किया जाने लगा ।

### **बोलियाँ तथा उपभाषाएँ :**

भारत वर्ष में आर्यों का आगमन कई अलग-अलग टोलियों में हुआ । फलस्वरूप उनकी भाषा में भी विभिन्नता पाई गई । यह भिन्नता (। र् । ल् । ध्वनियाँ ) कुछ टोलियों की बोली में। र् । और कुछ में। ल् । के रूप में विकसित होकर प्रकट हुई । ये टोलियाँ ज्यों-ज्यों पूर्व की ओर फैलती गई; त्यों-त्यों स्थानीय भाषाओं के प्रभाव के कारण इनका स्वरूप बदलता गया । इस दृष्टि से वैदिक काल में प्राचीन आर्य भाषा के तीन रूप तो अत्यन्त स्पष्ट हैं - पश्चिमोत्तरी, मध्यवर्ती तथा पूर्वी ।

पश्चिमोत्तरी का क्षेत्र अफगानिस्तान से पंजाब तक था और इसमें । र् । ध्वनि अपने मूल रूप में प्रचलित थी । मध्यवर्ती का क्षेत्र पंजाब से मध्य उत्तर प्रदेश तक था और इसमें । र् । का प्रयोग । र् । रूप में भी होता था और । ल् । के रूप में भी । पूर्वी क्षेत्र मध्य उत्तर प्रदेश का पूर्वी भाग था । और इसमें । र् । ध्वनि का स्थान पूर्णतः । ल् । ध्वनि ने ले लिया था ।

ऋग्वेद -संहिता के सूक्तों की रचना पंजाब प्रदेश से हुई थी, परन्तु आर्यों के दल निरन्तर पूर्व की ओर बढ़ने के कारण उनसे स्थानीय अनार्य जातियाँ भी पराभूत हुई । फलस्वरूप उनके बीच आर्य संस्कृति एवं भाषा की प्रतिष्ठा हो रही थी । 'यजुर्वेद -संहिता' तथा प्राचीन -ब्राह्मण -ग्रंथों के प्रणयन के समय मध्य-देश आर्य संस्कृति का केन्द्र बन चुका था । स्थानीय अनार्य जातियों से संपर्क तथा स्थान भेद के कारण भाषा में परिवर्तन होते जा रहे थे । प्राचीन वैदिक भाषा तथा दशम मंडल आदि की भाषा में जो भिन्नता थी वह निरन्तर बढ़ती जा रही थी । यजुर्वेद -संहिता के गद्य भाग तथा प्राचीन ब्राह्मण ग्रंथों में । ल् । का तथा मूर्धन्य व्यंजनों का प्रयोग बढ़ गया : शब्द रूपों में तथा धातु-रूपों की विविधता बहुत कम हो गयी और अनेक प्राचीन पद लुप्त हो गए । वैदिक साहित्य के अन्तिम भाग उपनिषदों तथा सूत्रों की भाषा, व्याकरण रूपों की सरलता के कारण 'संस्कृत' के बहुत समीप पहुँच गई ।

प्राचीन -भारतीय आर्य भाषा का वह रूप जिसका विवेचन पाणिनि के अष्टाध्यायी में मिलता है 'संस्कृत' कहलाता है । ईसा पूर्व छठी शताब्दी अथवा इससे कुछ पहले पाणिनि ने अपने समय की

शिष्ट समाज के व्यवहार की भाषा आदर्श -रूप में ग्रहण कर उसके आधार पर प्रसिद्ध व्याकरण -ग्रंथ 'अष्टाध्यायी' की रचना की । ब्राह्मण ग्रंथों में अनेक स्थानों पर इस बात का उल्लेख हुआ है कि उस समय 'उदीच्य-भाषा(पंजाब की भाषा) आदर्श भाषा मानी जाती थी । इसमें आर्य भाषा का प्राचीनतम रूप बहुत कुछ सुरक्षित था । मध्य देश एवं पूर्वांचल की भाषा में मूल आर्य भाषा से भिन्नताएँ बढ़ गई थीं । पाणिनि तक्षशिला के समीप शालातुर के निवासी थे ; औदीच्य होने के कारण वह शिष्ट समाज में आदर्श रूप से स्वीकृत, उदीच्य -भाषा से पूर्ण परिचित थे । इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि पाणिनि के व्याकरण की भाषा 'उदीच्य -भाषा' थी । 'अष्टाध्यायी' द्वारा संस्कृत भाषा का रूप हमेशा के लिए स्थिर हो गया । पाणिनि ने वैदिक भाषा को 'छन्दस्' नाम दिया है तथा अपने व्याकरण की आदर्श भाषा को लोक-प्रचलित भाषा कहा है । इस प्रकार उत्तरी बोली ही विकसित होकर संस्कृत भाषा कहलाई । भाषा के साथ संस्कृत का प्रयोग सर्व प्रथम बाल्मीकि रामायण में मिलता है । हनुमान सीता के साथ वार्तालाप में जिस भाषा का प्रयोग करते हैं, उसे वे 'मानुषी' और 'संस्कृत' बताते हैं । वेदों की भाषा से संस्कृत की भिन्नता दिखाने के लिए उसके साथ 'लौकिक' विशेषण का प्रयोग भी किया जाता है ।

### 1.3.2 वैदिक संस्कृत तथा लौकिक संस्कृत में अन्तर :

वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत में परिवर्तन का मुख्य कारण था बदलते परिवेश का । वैदिक संस्कृत का स्वरूप अंधिकांशतः बाहर से बनकर आया था, परन्तु लौकिक संस्कृत का स्वरूप भारत में बना जहाँ न केवल परिवेश एवं जलवायु भिन्न था बल्कि आर्यों का अनेक संस्कृतियों के साथ संपर्क भी हुआ । इससे जीवन का एक नया रूप सामने आया जिसकी अभिव्यक्ति के लिए माध्यम रूप भाषा का एक नये रूप में आना स्वाभाविक था । वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत में प्रमुख अन्तर निम्नलिखित है :

- (क) 1. वैदिक भाषा में ( ऋ -ऋृ , लृ -लृ ) शुद्ध स्वर थे जब कि वैदिक संस्कृत में दो -दो ( ऋ - ऋृ , लृ -लृ ) का एक-एक रूप ही रह गया और उच्चारण व्यंजन के समीप -। रि । लि । पहुँच गया ।
2. । ऐ । औ । का वैदिक दीर्घ उच्चारण - । आ - इ ।, आ -उ । लौकिक भाषा में ह्रस्व- । अ-इ । अ-उ । हो गया ।
3. । ए । ओ । वैदिक भाषा में संयुक्तस्वर - । अ-इ । अ-उ । थे परन्तु लौकिक संस्कृत में ये दोनों मूल स्वर बन गये ।
- 4 अनेक वैदिक शब्दों में प्रयुक्त । र् । लौकिक भाषा में । लृ । हो गया ।



5. वैदिक संस्कृत की। ल् । ल्ह । ध्वनियाँ लौकिक संस्कृत तक आते -आते समाप्त हो गयीं और उनके स्थान पर । ड ।ढ । ध्वनियों का प्रयोग होने लगा । जैसे 'अग्निमीलहे पुरोहितम्' को 'अग्निमीडे पुरोहितम् लिखा जाने लगा ।
6. वैदिक । इव् । उव् । के स्थान पर लौकिक संस्कृत में। य् । व् । रह गये
7. जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय के स्थान पर विसर्ग का सामान्य उच्चारण होने लगा ।
8. वैदिक काल का अघोष विसर्ग लौकिक संस्कृत में अघोष नहीं रह गया ।
9. वैदिक भाषा में अनुस्वार शुद्ध अनुनासिक ध्वनि थी, परन्तु लौकिक संस्कृत में वह पिछले स्वर से मिलकर बोला जाने लगा । इस प्रकार मौलिक स्वर अनुनासिक स्वर बन गया ।
10. कुछ ध्वनियों के उच्चारण स्थान बदल गये जैसे - दन्तमूलीय त वर्ग, ल्, र दन्त्य हो गए । दन्तमूलीय र मूर्धन्य हो गया । तीन 'व', दो अर्द्धस्वर और एक दन्तोष्ठ्य संघर्षी के स्थान पर एक दन्तोष्ठ्य 'व्' रह गया ।
11. वैदिक भाषा में स्वर - भक्ति -युक्त रूप था - स्वर्गः -सुवर्गः, स्वः -सुवः, तन्वः - तनुवः समाप्त हो गए । संस्कृत में केवल स्वर्गः, स्वः और तन्वः (स्वर -भक्ति - रहित ) ही मिलते हैं ।

**(ख) स्वराघात** - वैदिक संगीतात्मक स्वराघात लौकिक संस्कृत में बलात्मक स्वराघात बन गया ।

**(ग) 1. सन्धि** - सन्धि के क्षेत्र में लौकिक संस्कृत में विकसित प्रकृति -भाव वैदिक भाषा में नहीं मिलता ।

2. लौकिक संस्कृत में विसर्ग का 'उ' होने पर सामने का 'अ' स्वर पूर्ण रूप हो जाता है, परन्तु वैदिक संस्कृत में ऐसा नहीं होता जैसे - लौकिक - शिवोऽर्च्यः सोऽहम् । वैदिक- शिवो अच्योः सो अहम् ।

**(घ) कारक रूप** - वैदिक और लौकिक संस्कृत के कारक रूपों में निम्नलिखित भिन्नता है -

1. वैदिक भाषा के अकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दों के प्रथमा विभक्ति के द्विवचन और बहुवचन के तथा तृतीया, षष्ठी के बहुवचन के दो -दो रूप मिलते हैं, जैसे देवौ - देवो - देवाः - देवासः, देवैः -देवेभिः देवानाम् - देवाम् । परन्तु लौकिक संस्कृत में केवल प्रथम रूप - देवौ, देवाः, देवैः, देवानाम् रह गए ।

2. इकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दों के प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के द्विवचन के तथा तृतीया एकवचन के वैदिक भाषा में दो-दो रूप मिलते हैं - द्यावा -पृथिवी, द्यावा -पृथिव्यौ, सुष्टुतो -सुष्टुत्या, परन्तु लौकिक संस्कृत में केवल दूसरा रूप मिलता है - द्यावापृथिव्यौ । सुष्टुत्या ।
3. नपुंसकलिङ्ग की प्रथमा और द्वितीया विभक्तियों के बहुवचनों के दो-दो रूप फलाः- फलानि, जलाः -जलानि, वृक्षाः - वृक्षाणि मिलते हैं, परन्तु संस्कृत में एकमात्र 'आनि' प्रत्यायान्त रूप ही मिलता है ।
4. वैदिक भाषा में सप्तमी एकवचन के -सविभक्तिक और निर्विभक्तिक दोनों प्रकार के रूप प्रयुक्त होते हैं, जैसे -व्योम्नि - व्योमन्, ब्रम्हाणि - ब्रम्हान् । परन्तु संस्कृत में केवल सविभक्तिक रूप ही मान्य है ।

**(ङ) सर्वनाम** - युष्मत् तथा अस्मत् शब्दों के उत्तम तथा मध्यम पुरुष के कई वैदिक रूप बनते थे - त्वे, युष्मे, त्व, तुवा, में, अस्मे आदि, परन्तु लौकिक संस्कृत में ऐसा नहीं मिलता है ।

**(च) क्रिया** - क्रिया रूपों की भिन्नता निम्न प्रकार से है -

1. वैदिक भाषा में लुङ्, लड्, लिट् में परोक्षादि का भेद नहीं है ।
2. वैदिक भाषा के 'लेट्' लकार लौकिक संस्कृत में नहीं है ।
3. 'लोट्' लकार के मध्यम पुरुष बहुवचन में वैदिक में। त । तन । थन । और। तात् । प्रत्ययों का प्रयोग मिलता है, परन्तु लौकिक संस्कृत में एकमात्र । त । प्रत्यय रह गया ।
4. वैदिक । लोट् । लकार के मध्यम पुरुष का एकवचनान्त वृद्धि रूप लौकिक संस्कृत में नहीं मिलता ।
5. आत्मनेपदी धातुओं के 'लट्' लकार के प्रथम पुरुष एक वचन में तथा परस्मैपदी धातुओं के उत्तम पुरुष के बहुवचन में लौकिक में केवल एक-एक -ते, मः रूप मिलते हैं जबकि वैदिक में दो-दो - । ते । ए । (शेते । शये ।) तथा मः, एमसि (गच्छामः, गच्छेमसि) प्रयोग मिलते हैं ।
6. वैदिक भाषा में वर्तमान -काल में प्रयुक्त 'लेट्' लकार लौकिक में परोक्ष कालवाची हो गया ।
7. धातुओं के लड्, लुङ्, लृङ् लकारों के रूपों में लौकिक संस्कृत में धातु से पूर्व।

अ । अनिवार्य रूप से मिलता है, परन्तु वैदिक में यह ऐच्छिक रूप लिए हुए है ।  
(अगच्छत् - गच्छत । अगमिष्यत् - गमिष्यत् आदि)

8. निषेधार्थसूचक । मा । के साथ लौकिक संस्कृत में भूतकाल नहीं जुड़ता (मा अगच्छत) परन्तु वैदिक संस्कृत में ऐसा बन्धन नहीं है ।

### (छ) प्रत्यय -

1. वैदिक भाषा में पूर्वकालिक कृदन्त प्रत्यय बहुविध हैं - । त्वा । त्वाय । त्वीन । य । परन्तु लौकिक संस्कृत में इसके दो रूप रह गए हैं - । त्वा । य ।  
(गत्वा । अधिगत्य) ।
2. इसी प्रकार वैदिक भाषा में । तुमुन् । अर्थ में भी अनेक प्रत्यय हैं - । तुम् । से । असे । अध्ये । आदि परन्तु लौकिक संस्कृत में एकमात्र । तुम् । का ही प्रयोग होता है ।

### (ज) समास -

1. वैदिक भाषा सरलता लिए हुए है । उसमें लम्बे-लम्बे समासों की प्रवृत्ति नहीं मिलती । इसके विपरीत लौकिक संस्कृत में गद्य के विकास के कारण लम्बे-लम्बे समासों की प्रवृत्ति को अधिक प्रोत्साहन मिला ।
2. वैदिक संस्कृत में समासों के नियम पालन में अत्यधिक सरलता है जबकि लौकिक संस्कृत में कठोरता है । जैसे - वैदिक में पूर्वपद और उत्तरपद व्यवहृत हो जाते हैं - द्यावा चिदस्मै पृथ्वी नमेते जबकि लौकिक संस्कृत में ऐसा नहीं होता । लौकिक में 'द्यावापृथ्वी' संयुक्त रूप में ही आएगा ।
3. वैदिक संस्कृत में चार समास मिलते हैं - तत्पुरुष, कर्मधारय, बहुब्रीहि और द्वन्द्व । लौकिक में इन चारों के अतिरिक्त अव्ययीभाव, द्विगु, नञ् तथा एकशेष समासों का भी प्रयोग मिलता है ।

### (त) उपसर्ग -

1. वैदिक भाषा में उपसर्गों के संबंध में मूल -भारोपीय भाषा की प्रवृत्ति -वाक्य में कहीं भी रखा जा सकता है, जबकि लौकिक संस्कृत में उपसर्ग का शब्द -रूप अथवा क्रिया - रूप के साथ प्रारंभ में जुड़ना अनिवार्य है ।

(थ) शब्द - शब्दों की दृष्टि से वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत में निम्न अन्तर हैं -

1. पुराने शब्दों - चक्षस्, अत्क, ऊष तथा पेच आदि का लोप हो गया ।
2. नये शब्दों - विपुल, कर्तव्य, भव्य तथा समारोह आदि शब्दों का प्रयोग होने लगा ।
3. अनेक वैदिक शब्दों के अर्थ लौकिक भाषा में बदल गए , जैसे -

| शब्द   | वैदिक अर्थ    | लौकिक अर्थ  |
|--------|---------------|-------------|
| मृडीक  | दया           | महादेव      |
| क्षिति | निवासी(बस्ती) | पृथ्वी      |
| व्रत   | शासन          | उपवास, प्रण |
| असुर   | शक्तिशाली     | राक्षस      |
4. भ्रामक व्युत्पत्ति के कारण वैदिक शब्दों से लौकिक संस्कृत में असित ढंग से नए रूपों की रचना भी हुई है जैसे - असुर तथा असित में 'अ' निषेधवाची मानकर उनसे सूर और सित (देववाची और श्वेतवाची) शब्द बना लिए गए ।
5. विजातीय शब्दों को उदारता के साथ ग्रहण किया गया । वैदिक भाषा में द्रविड़ तथा आस्ट्रिक से आने वाले शब्दों की संख्या सीमित थी, परन्तु लौकिक संस्कृत में द्रविड़ , आस्ट्रिक, यूनानी, रोमन, अरबी, ईरानी, तुर्की तथा चीनी आदि भाषाओं के शब्दों की संख्या बहुत बढ़ गयी ।

**(द) बोलियाँ** - वैदिक भाषा की तीन बोलियाँ थी - पश्चिमोत्तरी, मध्यदेशी तथा पूर्वी । लौकिक संस्कृत की एक अन्य दक्षिणी बोली भी विकसित हो गयी थी । इस प्रकार उसकी चार बोलियाँ थीं ।

## 1.4 मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा :

तथागत भगवान बुद्ध के जन्म (500ई.पू.) तक भारतीय आर्य भाषा विकास के मध्यकाल में प्रवेश कर चुकी थी । ईसा से 1000-600 वर्ष पूर्व तक का काल उत्तरापथ में आर्यों के प्रसार तथा जनपदों के निर्माण का काल था । इस समय तक उत्तर -पश्चिम में गांधार प्रदेश से लेकर पूर्व में विदेह(उत्तर-बिहार) एवं मगध (दक्षिण-बिहार) पर्यन्त आर्य राज्य स्थापित हो चुके थे । और स्थानीय अनार्य जातियों में आर्य भाषा प्रतिष्ठित हो चुकी थी । अनार्य जातियों के मुख से आर्य भाषा का प्राचीन रूप अविकृत न रह सका । यह स्वाभाविक था । आर्य भाषा उनके लिए नई भाषा थी । अतः इसके ग्रहण करने में उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । आर्य लोग जिस

भाषा को सरलाता पूर्वक बोलते थे, उसकी कुछ ध्वनियों के उच्चारण में अनार्यों को कठिनाई होती थी। अतः उनके बीच आर्य भाषा का रूप बहुत कुछ परिवर्तित हो गया। आर्य भाषा। कृ। लृ। ध्वनियाँ लुप्त हो गईं। ऐ। औ। के स्थान पर। ए। ओ। का प्रयोग होने लगा और इस प्रकार। अय्। अव्। जैसे ध्वनि-समूहों का स्थान। ए। ओ। ने ग्रहण कर लिया। पदान्त व्यंजनों का लोप हो गया और पदान्त। म। ने अनुस्वार का रूप धारण कर लिया।। श। ष। स। इन तीन मध्य व्यंजनों के स्थान में उदीच्य भाषा के अतिरिक्त अन्य जनपदीय भाषाओं में केवल एक ऊष्म ध्वनि( मगध की भाषा में तालव्य। श। और अन्य बोलियों में दन्त्य। स।) व्यवहृत हुई। परन्तु आर्य भाषा की ध्वनियों में सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि संयुक्त -व्यंजन -ध्वनियों का समीकरण होने लगा और उसके फलस्वरूप। क्त्। त्क्। स्। क्र्। इत्यादि संयुक्त व्यंजनों के स्थान पर। त्। क्क्। त्। तथा। क्क्। इत्यादि का प्रयोग होने लगा तथा ऊष्म ध्वनियों एवं अर्द्ध स्वरों में परिवर्तन होने लगा।

प्राचीन आर्य भाषा के संगीतात्मक स्वराघात का लोप होकर अधिकांश जनपदीय भाषाओं में बलात्मक, स्वराघात स्थान पाने लगा स्वराघात प्रायः पद के अंतिम भाग के दीर्घ स्वर पर होता था।

ध्वनियों से भी अधिक परिवर्तन शब्द एवं धातु रूपों में प्रकट हुआ द्विवचन पूर्णतः लुप्त हो गया और प्राचीन आर्य भाषा के विविध प्रकार के व्यंजन एवं हलन्त प्रातिपदिकों के रूप अकारान्त प्रातिपदिकों के समान निष्पन्न होने लगे। पदान्त व्यंजनों के लोप से हलन्त प्रातिपदिक तो समाप्त हो चुके थे। प्राचीन आर्य भाषा में प्रातिपदिक के अन्तिम स्वर की भिन्नता के कारण 'अश्वस्थ' (अश्व -अकारान्त) 'मुने' (मुनि -इकारान्त), 'साधोः' (साधु - उकारान्त), तथा 'पितुः' ('पितृ' - ऋकारान्त) संबंधकारक एकवचन के रूपों में भिन्नता है। परन्तु अब इन सबके रूप 'अस्वस्स', 'मुनिस्स', साधुस्स', तथा 'पितुस्स' अकारान्त शब्द के समान बनने लगे। सर्वनामों के विशेष प्रकार के रूपों का संज्ञा -शब्दों में विधान होने लगा; जैसे 'तस्मिन् गृहे' का पालि में 'तस्मिन् घरस्मिन्' अथवा 'तन्हि घरम्हि' हो गया।

धातुओं के कालों एवं भावों की संख्या में हास हुआ। अभिप्राय लुप्त हो गया। और सामान्य एवं असम्पन्न के रूप 'भूतकाल' में मिला लिए गए तथा सम्पन्न का भी धीरे-धीरे लोप हो गया। प्राचीन आर्य भाषा में वितरणों की भिन्नता के अनुसार दस गणों में विभक्त धातुएँ अब एक ही 'गण' में आ गईं। असमापिका -क्रिया -पदों की संख्या बहुत घट गई।

ऐसे परिवर्तनों से प्राचीन आर्यभाषा को नवीन रूप प्राप्त हुआ। यह परिवर्तन संपूर्ण उत्तरापथ में समान गति से संपन्न नहीं हुआ। उदीच्य भाषा(उत्तर पश्चिम -सीमांत तथा पंजाब की भाषा) प्राचीन आर्य भाषा के बहुत समीप बनी रही। इसमें परिवर्तन की गति बहुत धीरे-धीरे थी। मध्यदेश की

भाषा इन परिवर्तनों से प्रभावित अवश्य हुई, परन्तु उच्चारण की शिथिलता उसमें अधिक नहीं आई । प्राच्य भाषा (वर्तमान अवध, उत्तर प्रदेश का पूर्वी भाग, तथा बिहार की भाषा) में परिवर्तन की गति बहुत तीव्र थी । सबसे यही आर्य भाषा के रूप में परिवर्तन प्रारंभ हुआ और सर्वत्र आर्य -भाषा का मध्यकालीन स्वरूप प्रस्फुटित हो गया ।

जनपदीय भाषाओं का स्वरूप निरन्तर परिवर्तित - विवर्तित होता रहा । 600ई. पूर्व से 1000ई. तक के 1600 वर्षों तक भारतीय -आर्य भाषा विभिन्न प्राकृतों तथा तत्पश्चात् 'अपभ्रंश' के रूप में विकसित होती हुई, आधुनिक -भारतीय आर्य भाषा की जननी बनी । आर्य भाषा के मध्यकालीन स्वरूप के विकास का ठीक-ठीक विवेचन करने के लिए 1600वर्षों के इस काल को निम्न पर्वों में बाँटा जा सकता है ।

1. प्रथम पर्व - जिसमें लगभग 200ई. पूर्व तक के प्रारंभिक -परिवर्तन (जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं) तथा 200ई. पूर्व से 200 ई. तक का विकास अन्तर्भुक्त है ।
2. 200 ई. से 600 ई. तक द्वितीय पर्व ।
3. 600 ई. से 1000 ई. तक तृतीय पर्व अथवा अपभ्रंश काल

### 1.4.1 प्रथम पर्व - पालि :

प्रथम पर्व में भाषा के विकास की अध्ययन - सामग्री पालि साहित्य तथा अशोक के अभिलेखों से प्राप्त होती है । बौद्धों विशेषतः दक्षिणी बौद्धों की यह भाषा 'मगध भाषा' अथवा 'देश-भाषा' के नामों से भी प्रसिद्ध है । पालि में बौद्ध धर्म के 'थेरवाद' (स्थविरवाद) अथवा 'हीनयान' संप्रदाय का धार्मिक साहित्य ग्रंथित है । मगध सम्राट अशोक के पुत्र राजकुमार महेन्द्र ने लंका में थेरवाद का प्रचार किया था और लंका नरेश 'वट्टगामणि' के संरक्षण में थेरवाद का 'त्रिपिटक' (बुद्ध के उपदेशों का संग्रह) लिपिबद्ध हुआ । तब से लंका में पालि साहित्य की सुरक्षा एवं अभिवृद्धि हुई । मूल त्रिपिटक पर 'अट्टकथा' (अर्थकथा) लिखी गई और 'विसुद्धि -पम्म', 'दीपवंस एवं 'मिलिन्दपन्हो' जैसे बौद्ध -धर्म संबंधी ग्रंथों का प्रणयन हुआ । लंका से थेरवाद का प्रचार वर्मा - स्याम, हिन्द-चीन आदि देशों में हुआ और वहाँ भी पालि ग्रंथों का अध्ययन होने लगा । इन देशों में अपनी -अपनी लिपियों में पालि ग्रंथ लिखे गए ।

वास्तव में 'पालि' शब्द का प्रयोग भाषा के अर्थ में कहीं भी नहीं हुआ है । इसका अर्थ होता है 'मूल पाठ' अथवा 'बुद्ध वचन' और अट्टकथा' से मूलपाठ की भिन्नता प्रकट करने के लिए इस शब्द का व्यवहार होता है । पालि भाषा न कहकर केवल 'पालि' शब्द से ही थेरवाद' के धार्मिक - साहित्य की भाषा को अभिहित करने की प्रथा आधुनिक काल में चल पड़ी है । 'पालि' के

स्वरूप पर विचार करने से पहले यह जानना आवश्यक है कि 'पालि' भारत के किस प्रदेश की भाषा रही होगी । 'पालि' शब्द की निरुक्ति के विषय में विभिन्न आचार्यों ने भिन्न-भिन्न समाधान प्रस्तुत किये हैं ।

पं. विधुशेखर भट्टाचार्य ने 'पालि' शब्द की व्याख्या संस्कृत पंक्ति शब्द से किया है और इसके ध्वनि परिवर्तन का क्रम पङ्क्ति - पन्ति - पत्ति - पट्टि - पल्लि - पालि बताया है । इस मत की पुष्टि इस बात से होती है कि बौद्ध -साहित्य में भी 'पालि' का अर्थ 'पङ्क्ति' किया गया है । परन्तु ध्वनि परिवर्तन के विचार से यह मत ठीक नहीं बैठता । ध्वनि परिवर्तन का यह क्रम भारतीय आर्य भाषा के मध्यकालीन विकास को देखते हुए असाधारण प्रतीत होता है । यही बात पल्लि(गाँव) से 'पालि' व्युत्पत्ति के संबंध में भी है । इस मत के विचारकों के अनुसार 'पालि' गाँवों की भाषा थी और संस्कृत नगरों की । ध्वनि परिवर्तन की दृष्टि से इस मत में दो त्रुटियाँ सामने आई हैं - पहले 'ल्' व्यंजन का लोप होना और उसके पूर्व के स्वर का दीर्घ हो जाना - यह परिवर्तन मध्य - आर्य भाषा की प्रारंभिक अवस्था के अनुरूप नहीं है । दूसरा 'पालि' के आविर्भाव काल में अंतिम स्वर का ह्रस्व होना भी असाधारण बात है । इसके अतिरिक्त यह कहना भी ठीक नहीं होगा कि 'पालि' केवल गाँवों तक ही सीमित थी क्योंकि 'पालि' का व्यवहार गाँवों तक ही सीमित नहीं थी ।

मैक्समूलर ने 'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति 'पाटलिपुत्र' से मानी है । उनका कहना है कि ग्रीक में 'पाटलिपुत्र' को 'पालिबोथ्र' लिखा गया है । ग्रीक में 'पाटलि' शब्द के स्थान पर 'पालि' किसी जनपदीय भाषा के आधार पर ही लिखा गया होगा । परन्तु यह मत इसलिए सम्मतिसंगत नहीं है कि 'पाटलि' शब्द का मध्य - भारतीय आर्य भाषा के विकास के दूसरे पर्व में 'पाडलि' रूप हुआ होगा और यह मान लेना युक्ति युक्त नहीं कि इसके प्रारंभ काल में ही 'ड' का लोप होकर 'पालि' शब्द चल पड़ा होगा ।

भिक्षु जगदीश कश्यप ने 'पालि महाव्याकरण' में पालि शब्द की व्युत्पत्ति पर्याय - परिचाय - पलियाय - पालियाय - पालिया और तत्पश्चात् 'पालि' शब्द निष्पन्न हुआ और व्यवहार में आया । 'पालि' शब्द की सीधी व्युत्पत्ति 'पा' धातु में 'णिच्' प्रत्यय 'लि' के योग से सम्पन्न होती है । प्राचीन लेखकों ने भी पालि की व्युत्पत्ति 'अत्थानपाति, रक्खतीति, तस्मात् पालि अर्थात् (अर्थों की रक्षा करनी है, इसलिए पालि)' 'पा' धातु से की है । इससे 'पालि -साहित्य के संकलन एवं लिपिबद्ध किए जाने के इतिहास पर भी प्रकाश पड़ता है ।

उपर्युक्त विवेचन से इस बात का कुछ भी पता नहीं चलता कि पालि किस प्रदेश की भाषा है । लंका के बौद्धों की यह मान्यता रही है कि 'पालि' मगध की भाषा थी और बुद्ध वचन इसी में संकलित है । किन्तु पालि और मागधी भाषा में कुछ ऐसी मौलिक भिन्नताएँ हैं जिसके कारण पालि को मागधी भाषा नहीं माना जा सकता । प्राकृत भाषा के वैयाकरणों ने मागधी भाषा का जो रूप

प्रस्तुत किया है और जो संस्कृत नाटकों में मिलती वह पालि के बहुत बाद की भाषा है। प्राचीन ध्वनियों में। श् । ष् । स् । और। र् । ध्वनियाँ हैं। मागधी में तालव्य । श् । और । ल् । ध्वनि हैं और पालि में। स् । र् । तथा । ल् । ध्वनि है और पुल्लिंग तथा नपुंसलिंग अकारान्त शब्दों के कर्त्ताकारक एक वचन में मागधी में । ए । तथा पालि में। ओ । प्रत्यय लगता है - जैसे मागधी में 'धम्मे' तथा पालि में 'धम्मो' । डॉ. ओलडन वर्ग के अनुसार कर्लिंग की भाषा ही पालि की आधारभूत भाषा है। इस संबंध में उन्होंने यह मत प्रकट किया है कि सिंहल में बौद्ध धर्म का प्रचार भारत एवं सिंहल के अनेक वर्षों के संबंध के फलस्वरूप हुआ होगा। फ्रेंक तथा स्टैन केनो आदि विद्वान पालि को उज्जयिनी अथवा विन्ध्य प्रदेश की बोली पर आधारित मानते हैं।

जार्ज ग्रियर्सन ने पालि में मागधी एवं पैशाची की कुछ विशेषताएँ देखकर यह निष्कर्ष निकाला कि पालि मूलतः मगध की भाषा थी। यहाँ से वह तक्षशिला विद्यापीठ में पहुँची और वहाँ उस पर पैशाची का प्रभाव पड़ा। परन्तु ग्रियर्सन का यह मत समीचीन नहीं है। तक्षशिला महायान-संप्रदाय का केन्द्र था। महायान संप्रदाय का त्रिपिटक संस्कृत में था। पालि में हीनयान संप्रदाय का त्रिपिटक था। अतः तक्षशिला में पालि त्रिपिटक के अध्ययन की संभावना अधिक नहीं थी। प्रोफेसर रीज डैबिड्स ने पालि को कोशल की बोली स्वीकार किया है। इनके अनुसार ईसा-पूर्व छठी-सातवीं शताब्दी में कोशल में प्रचलित भाषा ही पालि की जननी है, क्योंकि बुद्ध ने स्वयं अपने लिए कोशल-खत्तिय(कोशल-क्षत्रिय) कहा है। संभवतः कोशल की बोली में वे उपदेश करते होंगे। बुद्ध वचन मूल रूप में पालि में ही सुरक्षित है। अतः पालि कोशल की बोली से ही विकसित हुई है।

विंडिश और गायगर ने पालि को साहित्यिक भाषा स्वीकार किया है, जो सब जनपदों में समझी जाती थी और विभिन्न जनपदों में स्थानीय भाषा-उच्चारण आदि की विशेषताओं को भी ग्रहण करती थी। परन्तु साहित्यिक भाषा भी किसी जनपद विशेष की बोली पर आधारित होती है और पालि को मगध की बोली पर आधारित मानना युक्तिसंगत नहीं है।

आधुनिक खोजों के आधार पर यह बात प्रमाणित हो रही है कि 'त्रिपिटक' का संग्रह पालि के अतिरिक्त संस्कृत तथा अनेक प्राकृतों में भी हुआ है। बौद्ध धर्म के विभिन्न संप्रदाय 'मूल सर्वास्तिवाद' के ग्रंथ संस्कृत में, 'महासांधिक' के प्राकृत में, 'महासम्मत्तिय' के अपभ्रंश में और 'स्थविर' संप्रदाय के पैशाची में थे। अतः ऐसा जान पड़ता है कि बुद्ध वचनों का संग्रह विभिन्न जनपदों की बोलियों में हुआ था। स्वयं भगवान बुद्ध ने भी यह आदेश दिया था कि 'भिक्षुओ, अपनी-अपनी भाषा में बुद्ध वचन सीखने की अनुज्ञा देता हूँ।' ऐसी स्थिति में पालि त्रिपिटक का ही मूल त्रिपिटक होना संदिग्ध है। यह संदेह इस बात से और भी अधिक पुष्ट हो जाता है कि स्वयं अशोक ने बुद्ध वचनों का ज्ञान पालि भाषा में न प्राप्त करके 'प्राच्या' में संग्रहित त्रिपिटक से प्राप्त किया था।

पालि मूलतः मागधी से भिन्न है परन्तु पालि 'त्रिपिटक' में मागधी के अनेक रूप विद्यमान हैं



जैसे - भिक्खवे, सुबे, पुरिसकारे आदि । साथ ही पैशाची के भी कुछ लक्षण पालि में मिलते हैं । प्रो. गाइगर ने इसका कारण विभिन्न जन भाषाओं का पालि पर प्रभाव बताया है । संस्कृत 'त्रिपिटक' में भी कुछ मागधी रूप मिलते हैं । इस आधार पर सिलूवाँ लेवी तथा लूइस् इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि पालि एवं संस्कृत त्रिपिटक मूल मागधी त्रिपिटक के अनुवाद है और अनुवाद होने के कारण इसमें कुछ मागधी रूप आ गए हैं । त्रिपिटक का चीनी अनुवाद भी मागधी से ही किया गया था । क्योंकि उसमें स्थानों तथा व्यक्तियों के नामों के जो रूप मिलते हैं उनका ध्वनि परिवर्तन के नियमों के अनुसार पालि अथवा संस्कृत से संबंध न होकर प्राचीन मागधी से ही सादृश्य प्रतीत होता है । इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि त्रिपिटक का मूल रूप मागधी में रहा होगा और अन्य जनपदों की बोलियों में इसका अनुवाद हुआ है । मागधी प्राच्या का ही एक रूप है । 'श' कार का प्रयोग इसकी अपनी विशेषता थी । 'श' कार का प्रयोग साधारण जनता में भी रहा होगा । यह भाषा काशी, कोशल, विदेह और मगध में लोक व्यवहार की भाषा थी अतः बुद्ध ने भी इसी भाषा में अपने उपदेश दिए होंगे । बुद्ध के निर्वाण के पश्चात प्रमुख भिक्षु 'महाकस्सप' जो मध्यदेश के निवासी थे, इन्होंने मध्यदेश की भाषा प्राचीन -शौरसेनी जो मथुरा से उज्जैन तक प्रचलित थी, में भी बुद्ध वचनों का अनुवाद किया होगा । मध्यदेश उस समय ब्राह्मण एवं जैन धर्मों का केन्द्र था । अतः मध्यदेश की भाषा में त्रिपिटक का अनुवाद निश्चित रूप से हुआ होगा । उत्तर-पश्चिम की भाषा में भी बुद्ध वचनों का अनुवाद निश्चित रूप से हुआ होगा । राजकुमार महेन्द्र का जन्म मध्यदेश उज्जैन में हुआ अतः उनकी मातृभाषा भी वही थी । इसलिए उन्होंने भी मध्य-देश की भाषा में अनूदित त्रिपिटक का ही अध्ययन किया होगा । अतः पालि ही मध्यदेश की भाषा का आधार है । मागधी से अनूदित होने के कारण इसमें उसके अनेक रूप हैं । संभवतः राजकुमार महेन्द्र इसी त्रिपिटक को सिंहल ले गए । सिंहल में प्रतिष्ठित हो जाने पर पालि 'साहित्यिक -भाषा' बन गई और इसमें अन्य भाषाओं के रूप भी लिए जाने लगे ।

इन सब मतों के संबंध में डॉ. तिवारी का मत है - " वस्तुतः अपने मूल रूप में पालि मध्यदेश की भाषा है । वैसे उस समय वह पूरे भारत में एक अन्तर्प्रान्तीय भाषा जैसी थी । इस कारण उसमें अनेक प्रादेशिक बोलियों, विशेषतः बुद्ध की अपनी भाषा होने से मागधी के कुछ तत्व मिल गए थे । इस प्रकार अपने मूल रूप में पालि को शौरसेनी प्राकृत का मूल रूप मानते हैं । पालि कदाचित् दक्षिण भाषा पनपी । अशोकी प्राकृत की दक्षिणी बोली से इसका कुछ साम्य है ।"

परंपरागत रूप से पालि साहित्य को - पिटक और अनुपिटक - दो वर्गों में बाँटते हैं, जिनमें जातक, धम्मपद, मिलिन्द पन्हो, बुद्धघोष, की अट्टकथा, महावंश आदि प्रमुख हैं ।

पालि का भाषा शास्त्रीय विवेचन निम्न प्रकार से है - वैदिक भाषा की 55 और लौकिक संस्कृत की 52 ध्वनियों के सामने डॉ. तिवारी ने पालि की 47 ध्वनियाँ मानी हैं, जो इस प्रकार से हैं-

स्वर - अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ, ए, ओ = 10

व्यंजन - । क-वर्ग । च- वर्ग । ट-वर्ग । त-वर्ग । प-वर्ग । = 25

। य । य् । र् । र । ल । ल् । व । व् । स् । ह् । तथा निगृहीत (अनुनासिक)

## ध्वनि -प्रक्रिया की दृष्टि से पालि में हुए परिवर्तन :

प्राचीन आर्य भाषा और नव्य आर्य भाषा हिन्दी के बीच की स्थिति को समझने के लिए पालि का महत्व बहुत अधिक है । संस्कृत ध्वनियों का जनसाधारण में कैसे उच्चारण होता था, उसकी व्याकरणिक जटिलताओं को सुलझाने के लिए लोक में क्या प्रयत्न हो रहे थे और गत्यात्मक बोली में स्थित्यात्मक साहित्य भाषा से अलग क्या परिवर्तन हो रहे थे, इन सब बातों की जानकारी पहले-पहल पालि के अध्ययन से प्राप्त होती है । संस्कृत से हिन्दी तक पहुँचने के लिए पालि पहली सीढ़ी है । इसके ध्वनिगत परिवर्तन निम्न लिखित हैं -

1. पालि ने प्राचीन आर्यभाषा के। ऋ । कृ । लृ । लृ । ऐ । औ । विसर्ग । श, ष और संयुक्त व्यंजनों को छोड़ दिया । वैदिक । ञ । पालि में अत्यधिक पाया जाता है ।। ऋ । की जगह कहीं। अ । कहीं । इ । और कहीं । उ । मिलता है जैसे - नच्च (नृत्य से), तिण(तृण से) बुडडो (वृद्ध से) कभी -कभी ऋ का रि उच्चारण भी मिलता है । जैसे - रिच्छ (ऋक्ष से) । कृ, कृ, लृ व्यंजन पूर्ण रूप से लुप्त हो गए । ऐ की जगह 'ए' और 'औ' की जगह 'ओ' हो गया । जैसे सेल(शैल से), केवहो(कैवर्त से), चोरो(चौर से), मीन(मौन से) । अय । को 'ऐ' और । अव । को 'औ' की तरह परिवर्तित किया गया, जैसे - पालेति(पालयति), लोण(लवण) । प्राचीन आर्य भाषा के 'ए', 'ओ' का क्रमशःह्रस्व ए, ओ हो गए। 'अ' के साथ का विसर्ग 'ओ' हो गया और अन्य स्वरों के साथ लुप्त हो गया । जैसे देवा(देवः), अग्नि(अग्निः), धेनु(धेनुः) । श , ष दोनों का 'स' हो गया । जैसे नासेति(नाशयति), सकुण(शकुन), तेसु(तेषु) कोस(कोष) आदि ।

शब्द के अन्त में आने वाले हलन्त व्यंजन का लोप हो गया जैसे -भगवा(भगवान्), याव(यावत्) अर्थात् पालि में व्यंजनांत शब्द हैं ही नहीं ।

शब्द के आदि में 'पड़े संयुक्त व्यंजन का निर्बल अंग लुप्त हो गया । अन्तस्थ व्यंजन (य,र,ल,व) ऊष्म व्यंजनों (श,ष,स, ह) की अपेक्षा और ऊष्म व्यंजन स्पृष्ट व्यंजनों (क से म तक) की अपेक्षा अधिक निर्बल होते हैं जैसे - गाम(ग्राम), थूल(स्थूल), जेट्ठ(ज्येष्ठ), सेट्ठ (श्रेष्ठ), तिपिटक(त्रिपिटक), भमरो(भ्रमर) ।

शब्द के मध्य में संयुक्त व्यंजन के स्थान पर द्वित्व हो जाता है । अर्थात् एक व्यंजन की सत्ता तो लुप्त हो जाती है किन्तु दूसरे की सत्ता दीर्घ हो जाती है, जैसे पुत्तो(पुत्र), पक्को(पक्व) । इस प्रक्रिया

के कई भेद हैं -

1. अन्तस्थ - य,र,ल,व अत्यंत दुर्बल होने के कारण दूसरे व्यंजन में समा जाते हैं, जैसे- मग्ग(मार्ग), गोत्त(गोत्र), कम्म(कर्म), वाक्क(वाक्य), जप्प(जल्प) आदि में ।
2. यदि दोनों अन्तस्थ हों तो 'र', 'व' लुप्त होते हैं, जैसे- दुल्लभ (दुर्लभ), विल्ल(बिल्व),र और व का संयोग हो तो 'र' नहीं रहता, जैसे - सब्ब (सर्व) में
3. यदि संयुक्त व्यंजन में पहला अनुनासिक हो तो संयुक्त व्यंजन बना रहता है । जैसे - गन्ध, दन्त, सन्धि, अङ्, मञ्च इत्यादि ।
4. ज्ञ, न्य, व्य, के स्थान पर ज्ञ होता है, जैसे - ज्ञान (सं-ज्ञान), अज्जे (अन्धे), अरज्ज(अरण्य) आदि ।
5. किसी भी संयुक्त व्यंजन से पहले का दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता है, जैसे - सन्त(सं.-शान्त), सूत्त (सं.-सूत्र), मग्ग(मार्ग) आदि
6. यदि दोनों व्यंजन स्पृष्ट हो तो अर्ध व्यंजन का लोप होता है, किन्तु क वर्गीय ध्वनि नासिक्य ध्वनि से अधिक सबल होने के कारण बच जाती है, जैसे - सद(सं.-शब्द), सुत्त(सं.-सूक्त), अलद्धो (अलब्ध), तित्त(सं. - तित्त), तित्ति(तृप्ति), अग्नि( अग्नि) नग्ग(सं. - नग्न)
7. यदि संयुक्त व्यंजन में ऊष्म (श,ष,स, ह) पड़ा हो तो वह अपने स्थान पर 'ह' को दूसरे व्यंजन में समाविष्ट कर लेता है, जैसे - दिट्ठो(दृष्ट), भिक्खु(सं. - भिक्षु), फन्दन(सं. - स्पन्दन), विनिच्छय( विनिश्चय) ।
8. त्य, द्य, ध्य, का क्रमशः त्व, च्छ, ज्झ हो जाता है, जैसे- सच्च(सं. - सत्य), मिच्छ (सं. - मिथ्या), अज्ज( सं. -अद्य), बुज्झइ (बुध्यते) ।
9. कभी-कभी संयुक्त व्यंजन के बीच में स्वर भक्ति लाकर उसे सरल बनाया जाता है, जैसे- गरहा(सं. - ग्रह), सुरियो((सूर्य), वजिर(वज्र), अरियो( आर्य) आदि । प्राचीन संस्कृत से पालि में जो परिवर्तन हुए उनमें कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन इस प्रकार हैं - दन्त्य ध्वनियों का मूर्धन्यीकरण, जैसे - दाह(सं. -दाह), ठान(स्थान), अट्ठि(अस्थि), डसति(दशति), बुड्ढो(वृद्ध), ठपेत्वा( स्थापयित्वा) ।

यत्र-तत्र 'न' के स्थान पर 'ण' हो गया है, जैसे- ज्ञाण (ध्यान),जुण्हा(ज्योत्स्ना), सकुण(शकुन), वर्ण विपर्यय के उदाहरण - मकस(सं.- मशक,), विम्हय(सं. - विस्मय होना

चाहिए विहमय), अल्पप्राण के स्थान पर महाप्राणों के, महाप्राणों के स्थान पर अल्पप्राणों के प्रयोग की प्रवृत्ति भी मिलती है, जैसे - सुकुमार - सुखमाल, परशु - फरशु, कील - खील, - भगिनी - बहिणि आदि । स्वर मध्यम अघोष व्यंजन के घोष होने की प्रवृत्ति मिलती है, जैसे - माकन्दिय - मागन्दिय ।

**समीकरण** - अर्द्ध व्यंजन का परवर्ती जैसे - निम्न - निन्न, मार्ग- मर्ग, कर्म - कम्म, जीर्ण - जीण । समीकरण की इस प्रवृत्ति में संस्कृत के संयुक्त व्यंजनों के पूर्व का दीर्घ स्वरह्रस्वहो गया है और संयुक्त व्यंजन द्वित्व हो गया है । यह इस तत्व का सूचक है कि पालि में विशेष मात्रा नियम मिलता है । यह अक्षर एक मात्रा अथवा दो मात्राओं के ही है । घोष महाप्राण ध्वनियों के 'ह' हो जाने की प्रवृत्ति दिखाई देती है, जैसे- भवति - होति, लघु - लहु, रुधिर - रुहिर । पालि में स्वराघात के दोनों रूप बलात्मक तथा संगीतात्मक मिलते हैं, किन्तु अधिकता बलात्मक की ही है ।

**व्याकरण** - व्याकरण की दृष्टि से पालि भाषा न केवल वैदिक भाषा के समान स्वच्छन्द है, अपितु उसकी अपेक्षा सरल भी है । पालि भाषा के रूपों के सरलीकरण की प्रवृत्ति उल्लेखनीय है । व्याकरण की दृष्टि से पालि की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं -

1. अंत्य व्यंजन लोप तथा स्वरागमन के सामान्य नियम के कारण व्यंजनान्त रूपों का अभाव है, जैसे - विद्युत् - विद्युत, शरत् - शरद ।
2. भिन्न स्वरान्त शब्दों के रूप सादृश्य के कारण समान हो गए हैं जैसे - देवस्स, अग्गिस्स, भिक्खुस्स ।
3. यों तो लिंग तीन हैं किन्तु नपुंसक लिंग पुल्लिंग में समाविष्ट हो गया ।
4. वचन दो हैं - एकवचन तथा बहुवचन । द्विवचन नहीं है ।
5. वैदिक भाषा के समान पालि में एक ही शब्द की एक विभक्ति के एक से अधिक रूप मिलते हैं जैसे - धम्म, धम्मस्मि, धम्महि ।
6. क्रिया रूपों में तीन पुरुष और दो वचन हैं । आठ कारकों के स्थान पर छह, दस गणों के स्थान पर सात, दस लकार की जगह आठ लकार और दो पदों के स्थान पर केवल एक परस्मैपद रह गया ।
7. संज्ञाओं में जो लिंग और अंत्य अक्षर के भेद से शिथिलता थी, उसके स्थान पर बहुत कुछ एकरूपता आ गई ।
8. क्रियार्थ चार हैं - निश्चिय, आज्ञा, आदरार्थ आज्ञा, तथा सम्भावना । काल भी चार हैं - लट्, लड्, लुट्, लृड् ।
9. पालि में तद्भव शब्दों की अधिकता है ।

## **बोलियाँ :**

विकास की दृष्टि से पालि के कम से कम चार रूप मिलते हैं । इसका प्राचीनतम रूप त्रिपिटक में सुरक्षित है । इसका दूसरा विकसित रूप त्रिपिटक के गद्य में मिलते हैं । तीसरा रूप बुद्धघोष की अट्ठकथा आदि गद्य है और चौथा रूप उत्तरकालीन काव्य ग्रंथों - दीपवंश , महावंश आदि की भाषा है । पालि की ध्वनि एवं शब्द तथा धातु - रूपों के इस दिग्दर्शन से स्पष्ट हो जाता है कि इसमें मध्य - भारतीय - आर्य - भाषा को जन्म देने की प्रवृत्तियाँ सक्रिय हो गई थीं ।

## **अभिलेखी प्राकृत :**

इस प्राकृत के अधिकांश लेख शिलाओं पर होने के कारण इसका एक नाम शिलालेखी प्राकृत भी है । अभिलेखी प्राकृत को दो भागों में विभक्त किया गया है -

1. अशोकी के अभिलेख,
2. अशोकेतर अभिलेख ।

## **अशोकी अभिलेख :**

ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी के मध्य -भाग में मौर्य सम्राट अशोक ने अपने विशाल साम्राज्य के विभिन्न भागों में धर्म तथा शासन संबंधी लेख चट्टानों, प्रस्तर -खंडों, स्तंभों, गुफाओं की भित्तियों आदि पर उत्कीर्ण करवाए थे । वे अभिलेख हिमालय से मैसूर तथा बंगाल की खाड़ी से अरब सागर पर्यन्त विभिन्न स्थानों में पाए गए हैं । ऐतिहासिक दृष्टि से ये महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ भाषा के विकास क्रम के अध्ययन में भी इनसे काफी सहायता मिलती है, क्योंकि इनमें मध्य-भारतीय - आर्य -भाषा का प्राचीनतम रूप मिलता है । इन अभिलेखों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि जनसाधारण के बोध के लिए लिखे जाने के कारण विभिन्न जनपदों में उनकी स्थानीय बोलियों में लिखा गया । फलस्वरूप ये इतिहास की दृष्टि से ही नहीं, अपितु भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि इनसे ही ईसापूर्व से तीसरी शताब्दी तक मध्य देश के विभिन्न क्षेत्रों में भाषा के विभिन्न रूपों के प्रचलन की प्रामाणिक जानकारी मिलती है ।

विषय की दृष्टि से अशोक के प्राप्त अभिलेखों को तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है । प्रथम श्रेणी में छह शिला लेख आते हैं । इनमें से दो शिलालेख उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्त में, पेशावर से 40 मील उत्तर-पूर्व शाहबजगढ़ी में, और पंजाब के हजारा जिले में मानसरोवर नाम के स्थान में एक मील पश्चिम की ओर पहाड़ी पर खुदे हैं । ये दोनों शिलालेख खरोष्ठी लिपि में हैं, जो दाएँ से बाएँ लिखी जाती थी । तीसरा शिलालेख गुजरात में गिरनार प्राचीन रैवतक पर्वत के अंचल में उत्कीर्ण हैं ; चौथा देहरादून जिले में मसूरी से चकरौला की ओर जाने वाले मार्ग पर 16 मील की दूरी पर कावसी

नामक स्थान में हैं ; पाँचवाँ और छठा अभिलेख कर्लिंग (आधुनिक ओड़िशा) के धौली और जउगड़ नामक स्थानों में है । ये चारों शिलालेख ब्रह्मीलिपि में हैं । इन सभी शिलालेखों में अशोक के धर्म एवं शासन संबंधी सिद्धांतों का वर्णन है ।

दूसरी श्रेणी में नौ लघु शिलालेख हैं । इनमें से तीन मैसूर राज्य में, चौथा शाहाबाद जिले के सहसराम गाँव में, पाँचवाँ जबलपुर जिले में छठा जयपुर राज्य के वैराट में, सातवाँ भी वैराट में था जो वर्तमान में कोलकता के रायल - एशियाटिक - सोसायटी के भवन में रखा है । और आठवाँ निजाम राज्य के अन्तर्गत मास्की नामक गाँव में है । एक लघु शिलालेख मद्रास राज्य में है । इन अभिलेखों से अशोक की जीवनी पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है ।

तीसरी श्रेणी में आठ स्तम्भ लेख, गुहालेख और अन्य लघु अभिलेख आ जाते हैं । स्तम्भ -लेख अम्बाला , मेरठ, कौशाम्बी, बिहार के चम्पारण जिले में लोड़िया नामक ग्राम के समीप दो, रामपुरवा में एक, नेपाल की तराई में रुम्मिन देई तथा निग्लीव ग्राम में स्थापित किए गए थे । अम्बाला और मेरठ के स्तम्भ वर्तमान में दिल्ली में रखे गए हैं । कौशाम्बी का स्तम्भ इलाहाबाद में है । इनके अतिरिक्त सारनाथ, साँची आदि स्थानों में भी लघु शिलालेख प्राप्त हुए हैं । गया के समीप बराबर की पहाड़ी में तीन गुहालेख उत्कीर्ण हैं । अशोक के अभिलेखों में शिलालेख विशेष महत्वपूर्ण हैं ।

## **अशोकेतर अभिलेख :**

अशोकेतर अभिलेखों का संबंध खंडित शिलाओं, स्तम्भों, ताम्रपत्रों आदि पर लिखे लेखों से है, जो अशोक के जीवनोपरान्त के हैं और पश्चिमोत्तर भारत में मिलते हैं । सबकी भाषा प्रायः पश्चिमोत्तरी है ।

अशोक के अभिलेखों में तीन भारतीय -आर्य - जनभाषाओं के रूप सुरक्षित हैं -

- 1) उत्तर-पश्चिम की जनभाषा, शहबाजगढ़ी और मनसेरा अभिलेखों में ।
- 2) दक्षिण-पश्चिम की जनभाषा, गिरनार आदि अभिलेखों में ।
- 3) प्राच्य भाषा, धौली, जउगढ़, रामपुरवा, सारनाथ , भाजू आदि अभिलेखों में ।

अशोक के अभिलेखों में प्राच्य भाषा के जो लक्षण दिखाई देते हैं, उसका प्रमुख कारण यह है कि अशोक के ये अभिलेख पहले प्राच्य भाषा में ही तैयार किए गए थे ।

अशोक के अभिलेखों की भाषा में प्राचीन भारतीय -आर्य भाषाओं से जो भिन्नताएँ प्रकट होती हैं, वे प्रधानतया परिवर्तन की प्रवृत्तियों की परिचायक हैं । ये प्रवृत्तियाँ आगे चल कर मध्य - भारतीय -आर्य -भाषा के द्वितीय एवं तृतीय पर्व में निरपवाद रूप से प्रचलित हुई ।

## 1.4.2 प्राकृत :

मध्य भारतीय आर्य भाषा के संक्रांति काल में (ई.पू. 200 से 200ई. तक ) हमने देखा कि स्वर मध्यम-अघोष-स्पर्श -व्यंजन, सघोष होने लगे थे । ईसा की तीसरी -चौथी शताब्दी में उच्चारण की इस प्रवृत्ति में नए परिवर्तन प्रकट होने लगे, जिन्होंने मध्य भारतीय आर्य भाषा का रूप बहुत बदल दिया । स्वर माध्यम -सघोष -स्पर्श व्यंजनों के उच्चारण शिथिलता आ गई, जिससे वे ऊष्म ध्वनि के समान बोले जाने लगे । किन्तु यह परिवर्तन बहुत समय तक बना नहीं रह सका और कुछ समय पश्चात् शिथिलता पूर्वक उच्चारित ये सघोष व्यंजन ध्वनियाँ लुप्त होने लगीं । इस परिवर्तन से भाषा का स्वरूप इतना परिवर्तित हो गया कि वह प्राचीन आर्य भाषा से भिन्न प्रतीत होने लगी । मध्य -भारतीय -आर्य -भाषा के द्वितीय पर्व का यह परिवर्तन सबसे प्रमुख लक्षण है । निम्न उदाहरणों से यह क्रम स्पष्ट परिलक्षित होता है -

शुक - सुग । सुग - सुआ ; मुख -मुध । मुध्र - मुह, हित - हिद । हिद्र- हिअ: कथा - कछा । कछ्रा -कहा:

सघोष -स्पर्श व्यंजनों के इस शिथिल ऊष्म -उच्चारण को प्रकट करने के लिए लिपि में किसी नवीन चिन्ह का प्रयोग नहीं किया गया किन्तु रूप में परिवर्तन होता गया । लिखित भाषा में यह परिवर्तन प्रकट न होने के कारण उत्तरकालीन प्राकृत वैयाकरण ने यह समझ लिया कि अघोष -स्पर्श -व्यंजनों के घोषवत उच्चारण तथा सघोष व्यंजनों के लोप की प्रक्रिया समकालीन है और इस परिवर्तन रूप को व्याकरणकारों ने एक ही कालक्रम में रखकर विभिन्न नामों से अभिहित किया । परिवर्तन की प्रथम स्थिति में वर्तमान भाषा को उन्होंने 'शौरसेनी' तथा अन्तिम स्थिति में वर्तमान स्वरूप को 'महाराष्ट्री' की संज्ञा दी । किन्तु वास्तव में 'शौरसेनी' एवं महाराष्ट्री एक ही भाषा के रूप हैं ।

प्राकृतों ने पालि के ध्वनिगत नियमों को दृढ़ता से आगे बढ़ाया । अर्थात् ऋ, ॠ, लृ, लॄ, ऐ, औ, श, ष, और संयुक्त व्यंजन उसी तरह परिवर्तित होते रहे । व्यंजन ध्वनियों के इस क्रांतिकारी परिवर्तन के साथ-साथ शब्द एवं धातु रूपों के समीकरण की प्रक्रिया भी प्रगतिशील रही । शब्द रूपों की भिन्नताएँ बहुत कुछ प्रथम पर्व में ही समाप्त हो चुकी थी । द्वितीय पर्व में अवशिष्ट रूप-भेद भी समाप्त हो गए और सभी शब्दों के रूप अकारान्त शब्द के समान निष्पन्न होने लगे । कारकों की संख्या भी कम हो गई । संप्रदान एवं संबंध -कारक के रूप समान हो गए । कर्ता एवं कर्म कारक बहुवचन का काम एक ही रूप से लिया जाने लगा । द्विवचन पूर्ण रूप से समाप्त हो गया । धातु रूपों में आत्मनेपद के बहुत कम या एक -दो रूप ही शेष रह गए और वह भी अपने मूल अर्थ को छोड़ कर । लड्, लिट् तथा विभिन्न प्रकार के लुङ् रूप समाप्त हो गए । कारक एवं क्रिया का संबंध स्पष्ट

करने के लिए संज्ञा शब्द के साथ कारक, अव्यय एवं कृदंत रूपों के प्रयोग की प्रवृत्ति बढ़ने लगी । वही कारक अव्यय आगे चलकर आधुनिक भारतीय -आर्य-भाषा में अनुसर्ग या परसर्ग बने । इस प्रकार भारतीय आर्य भाषा का रूप विश्लेषणात्मक बनने लगा । मध्यकाल के द्वितीय पर्व तक आते -आते प्राचीन भारतीय आर्य भाषा की शब्द एवं धातु रूपों की विविधता एवं संपन्नता समाप्त हो गई । परन्तु अब भी भाषा का रूप इस सीमा तक नहीं बदला कि जनसामान्य के लिए संस्कृत सर्वथा दुर्बोध हो जाए । संस्कृत नाटकों में विभिन्न प्राकृतों के प्रयोग की प्रथा से प्रतीत होता है कि संस्कृत साधारण जनता के लिए अभी भी बोधगम्य थी ।

जिस प्रकार प्राचीन भारतीय आर्य भाषा को साधारणतया संस्कृत कह दिया जाता है, उसी प्रकार मध्य भारतीय आर्य भाषा के लिए 'प्राकृत' शब्द प्रयोग किया जाता है । 'प्राकृत' शब्द की व्युत्पत्ति 'प्रकृति' (जनसाधारण) से है । अतः प्रकृत का अर्थ हुआ जनसाधारण की भाषा । शिष्ट समाज की भाषा संस्कृत से अन्तर स्पष्ट करने के लिए जनसामान्य की भाषा को 'प्राकृत' की संज्ञा दी गई । उत्तरकालीन प्राकृत वैयाकरण 'पालि' से परिचित नहीं थे और न ही अशोक के अभिलेखों की भाषा या अन्य अभिलेखों की भाषा उनके सामने थी । अतः उन्होंने संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त कुछ काव्य ग्रंथों एवं जैनों के धार्मिक ग्रंथों में व्यवहृत प्राकृतों पर ही विचार किया । अतः प्राकृत शब्द जैन - आगमों की 'आर्षी' अथवा अर्द्धमागधी तथा अन्य साहित्यिक रचनाओं की 'मागधी', 'शौरसेनी', 'महाराष्ट्री' तथा 'पैशाची' बोलियों के अर्थ में रूढ़ हो गया ।

प्राकृत व्याकरणों में सबसे पहले नाम 'वररुचि' का आता है । वररुचि ने प्राकृत के चार भेद किए - महाराष्ट्री, पैशाची, मागधी और शौरसेनी । जैन आचार्य हेमचन्द्र ने 'आर्षी' अथवा अर्द्धमागधी और 'शूलिका - पैशाचिक' ये दो भेद भी स्वीकार किए हैं । भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में सात प्राकृतों का उल्लेख किया है - शौरसेनी, मागधी, अर्द्धमागधी, दाक्षिणात्या, बाह्लीक, आवन्तिजा तथा प्राच्या । प्राकृत वैयाकरण चंड ने 'प्राकृत -लक्षण' में महाराष्ट्री के अतिरिक्त गौण रूप में शौरसेनी, पैशाची और अपभ्रंश का वर्णन किया है । 'साहित्य -दर्पण' में बारह प्राकृतों के नाम गिनाए गए हैं जिनमें 'शाकरी, द्राविड़ी, आभीरी और चांगली नए हैं । 'प्राकृत - लंकेश्वर में सोलह और प्राकृत-चंद्रिका' में सत्ताईस भेद बताए गए हैं । इन प्राकृतों की अनेक शाखाएँ रही होंगी, परन्तु उनमें कोई साहित्य रचना न होने के कारण उनका पूरा परिचय नहीं मिलता । केवल यत्र-तत्र बिखरे हुए कुछ विशिष्ट शब्दरूपों से इसका अनुमान मात्र किया जा सकता है । साहित्यिक महत्ता की दृष्टि से शौरसेनी, पैशाची, महाराष्ट्री, मागधी और अर्द्धमागधी, मुख्य हैं ।



### 1.4.3 शौरसेनी :

मथुरा अथवा शूरसेन के आस-पास की इस बोली का विकास तत्कालीन पालि के स्थानीय रूप से हुआ। मध्यदेश की भाषा होने के कारण कुछ विद्वान इसे परिनिष्ठित भाषा मानते हैं। मध्यदेश संस्कृत भाषा केन्द्र होने के कारण शौरसेनी अपने समय की सर्वाधिक आभिजात्य भाषा थी और अत्यन्त समादृत थी। एक समय यह उत्तर भारत की राष्ट्र भाषा थी। दिगम्बर जैन मत का साहित्य सिद्धांत इसी में है। संस्कृत नाटकों में यह गद्य की भाषा है। शौरसेनी संस्कृत के अधिक निकट होने के कारण अन्य प्राकृतों की अपेक्षा इसमें तत्सम और अद्धतत्सम शब्दों का प्राचुर्य है। ध्वनि विकास और व्याकरण की दृष्टि से शौरसेनी महाराष्ट्री से अधिक प्राचीन है। और इसमें मध्यवर्ती एकल व्यंजन पूरी तरह लुप्त नहीं हुए थे। नाटकों में स्त्रियों का वार्तालाप शौरसेनी प्राकृत में होता है। केवल पद्य के लिए महाराष्ट्री थी। शौरसेनी से ही वर्तमान हिन्दी का विकास हुआ। राजशेखर कृत - 'कर्पूर-मंजरी' का समस्त पद्य भाग शौरसेनी प्राकृत में है। भास, कालिदास के नाटकों में गद्य शौरसेनी में है। इसका प्राचीनतम रूप अश्वघोष के नाटकों में मिलता है। इसमें सरसता, सरलता, श्रवण-सुखदत्ता अधिक थी अतः यह अधिक लोकप्रिय हुई।

इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

1. असंयुक्त तथा दो स्वरों के मध्य आने वाले। त् । थ् । इसमें। द् । ध् । हो गए, जैसे -गच्छति - गच्छदि । कथय - कधोहि ।
2. दो स्वरों के मध्य की द्, ध् ध्वनियाँ अपरिवर्तित है जैसे - जलद : - जलदो ।
3. 'क्ष' ध्वनि 'क्ख' में परिवर्तन हो गई है जैसे इक्षु -इक्खु । कुक्षि -कुक्ख ।
4. 'ऋ' स्वर 'ई' बन गया जैसे ऋण- रिण । ऋषि - रिषि ।
5. संयुक्त व्यंजनों के सरलीकरण की प्रवृत्ति है - जैसे - उत्सव -उसव
6. धातु केवल परस्मैपदी है ।
7. रूपों की दृष्टि से शौरसेनी संस्कृत से अधिक प्रभावित है । वास्तव में संस्कृत की उत्तराधिकारिणी शौरसेनी ही है ।

### पैशाची :

पैशाची पैशाचिका, ग्राम्यभाषा, मृतभाषा, भूतबन, भूतभाषित आदि विभिन्न नामों से जानी जाने वाली यह भाषा उत्तर-पश्चिम के कश्मीर के समीप की भाषा है। हार्नले ने इसे द्रविड़ों द्वारा प्रयुक्त भाषा तथा पुरुषोत्तम देव ने संस्कृत और शौरसेनी का विकृत रूप माना है। पैशाची उन आर्यों

की भाषा है जिन्होंने आर्य संस्कृत को पूरी तरह नहीं अपनाया था । इसके अवशेष चीनी, तुर्किस्तान, काफिरस्तान, गांधार आदि में पाए गए शिलालेखों में मिलते हैं । पंजाब, सिंध, बलोचिस्तान और कश्मीर की भाषाओं में पैशाची का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है । गुणाढ्य कृत 'वृहत्कथा' के कारण इसकी विशेष ख्याति है, परंतु मूल कृति अप्राप्य है । उसके संस्कृत रूपांतर उपलब्ध हैं । गुणाढ्य प्रतिष्ठान के राजा शालिवाहन (सन् 78 ई. के आस-पास) द्वारा निर्वासित होकर ये पिशाच देश में जा बसे थे । वहीं उन्होंने लोककथाओं का अपूर्व संग्रह संपादित किया था । पैशाची का हिंदी प्रदेशों से कोई विशेष संपर्क नहीं था ।

प्रसंगवश यह उल्लेख करना आवश्यक है कि पिशाच देश के पश्चिम में निय नामक स्थान में खरोष्ठी लिपि में जो अभिलेख प्राप्त हुए, उसे निय प्राकृत कहा गया । तीसरी सदी तक यह भाषा पश्चिमोत्तर प्रदेश में व्याप्त थी । इसकी भाषा मूलतः भारत के उत्तर-पश्चिम अंचल की भाषा है । जिसका पश्चिम में अशोक के शाहबाजगढ़ी एवं मनसेरा अभिलेखों में मिलता है परन्तु इस पर पड़ोसी देशों की ईरानी, मंगोल, तुखारी आदि भाषाओं का भी प्रभाव रहा है । प्राकृत -धम्मपद की भाषा का भी यही रूप है । परंतु साहित्यिक भाषा होने के कारण इसमें अधिक प्राचीन रूप स्थान पा सके हैं । खरोष्ठी लिपि में लिखे जाने के कारण इसमें दीर्घ स्वरों के स्थान पर ह्रस्वस्वर एवं संयुक्त व्यंजनों में से केवल एक व्यंजन ही लिखा गया है । इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

1. दो स्वरों के मध्यस्थ स्पर्श (कवर्ग । प वर्ग) वर्गों के घोष व्यंजन (तृतीय, चतुर्थ) अघोष(प्रथम, द्वितीय) हो गए हैं । जैसे - गगन-गकन । मेघ -मेख । राजा - राचा । दामोदर -तामोतर । आदि ।
2. र्, ल् का वैकल्पिक (र् के स्थान पर ल् तथा ल् के स्थान पर र् का) प्रयोग मिलता है । जैसे - रुद्र- लुद्र । कुमार -कुमाल । फल -फर ।
3. मूर्धन्य ष् के स्थान पर तालव्य श् और दन्त्य स् ध्वनियाँ मिलती हैं, जैसे - तिष्ठत्ति -चिश्तादि । विषम - विसम ।
4. स्पर्श के मध्य आने वाले स्वरों का लोप नहीं होता, जैसे -नगर -नकर ।
5. ल् ध्वनि वैदिक ध्वनि के रूप में मिलती हैं, जैसे- जल -जल । सलिल -सलिल । कुल -कुल । आदि ।
6. ण् के स्थान पर न् और न् के स्थान पर ण् ध्वनि मिलती है, जैसे - गुण- गुन । अधुना - अहुणा ।
7. लिंग और वचन दो -दो हैं । कारक साहित्यिक प्राकृत की अपेक्षा कम हैं । क्रिया रूप प्रायः प्राकृत के समान हैं ।

#### 1.4.4 मागधी :

मागधी के आस-पास की इस भाषा को लाससन आदि विद्वानों ने महाराष्ट्री से अभिन्न माना है । वररुचि ने इसका उद्गम शौरसेनी से बताया है । लंका में पालि को ही मागधी कहा जाता है । मागधी का प्रयोग संस्कृत नाटकों में और वह भी निम्न पात्रों द्वारा हुआ है । मागधी में कोई स्वतंत्र रचना नहीं मिलती । इसका प्राचीनतम रूप अश्वघोष के नाटकों में मिलता है । कालिदास के नाटकों में तथा शूद्रक के 'मृच्छकटिक' में मागधी का प्रयोग हुआ है । भरत के नाट्यशास्त्र के अनुसार इसका प्रयोग अन्तःपुर के नौकर, अश्वपालक आदि करते थे । मार्कण्डेय के अनुसार मिश्र, श्रवणक, राक्षस, चेट आदि मागधी बोलते थे । इसके जातीय रूप हैं - वाहिलकी, ढक्की, शावरी तथा चाण्डाली । इसकी एक उपबोली -शाकरी -का भी उल्लेख , असमी विकसित हुई है । इसकी प्रमुख भाषिक विशेषताएँ इस प्रकार हैं -

1. स्, ष ध्वनियों के स्थान पर श् ध्वनि मिलती है, जैसे -  
सप्त, शप्त । पुरुष -पुलिष ।
2. र् ध्वनि सर्वत्र 'ल्' का रूप लेती है, जैसे- राजा -लाजा
3. 'स्थ' और 'थ' के स्थान पर 'स्व' मिलता है, जैसे -  
उपस्थित - उवस्तिद्, अर्थवली - स्तवली ।
4. ज् के य् होने की प्रवृत्ति भी मिलती है, जैसे -  
जानाति - याशादि । जायते - जायदे ।
5. प्रथम ऊष्म वाले संयुक्त व्यंजनों में अन्य प्राकृतों के समान परिवर्तन नहीं होता -  
हस्त -हश्त ।
6. शब्द के प्रथम एकवचन के रूपों के अः के स्थान पर 'ए' मिलता है । । देवः -  
देवे । सः - से ।

#### अर्द्ध मागधी :

यह मागधी और शौरसेनी के मध्यवर्ती क्षेत्र प्राचीन कोशल के आस-पास की भाषा है । मागधी की प्रवृत्तियों को पर्याप्त मात्रा में लिए रहने के कारण ही इसका नाम अर्द्ध मागधी है । जैन विद्वान तो इसे 'आर्षी' कहते थे और आदि भाषा मानते थे । जैन आर्यों ने इस भाषा में शास्त्र की रचना की । जैन साहित्य - गद्य और पद्य में इसका प्रयोग हुआ है । अश्वघोष की रचनाओं 'मुद्रा राक्षस' तथा 'प्रबोध - चन्द्रोदय' आदि नाटकों में इसका प्रयोग मिलता है । विश्वनाथ कविराज ने

‘साहित्य -दर्पण’ में इसे एक ओर गुप्तचरों और दूसरी ओर सेठों तथा राजपुत्रों की भाषा कहा है । इससे स्पष्ट होता है कि इसका संबंध लोकजीवन की अपेक्षा अभिजात्य वर्ग से अधिक था । इसीसे पूर्वी हिन्दी का विकास माना जाता है । इस भाषा की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं -

1. श्, ष् के स्थान पर प्रायः ‘स्’ मिलता है जैसे श्रावक - सावग । वर्ष - वास ।
2. दन्त्य -ध्वनियाँ (लृ, त वर्ग ल तथा स) मूर्धन्य (ऋ, ट वर्ग, र तथा ग) हो गयी हैं । जैसे । स्थित - ठीय । कृत्वा -कट्ट) आदि ।
3. च वर्ग के स्थान पर कहीं -कहीं ल-वर्ग मिलता है - चिकित्सा - तेइच्छा ।
4. इसमें र् एवं ल् दोनों ही ध्वनियाँ विद्यमान हैं ।
5. क् के ग् ध्वनि होने की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है - एक -एग ।
6. स्वरों के मध्यवर्ती स्पर्श व्यंजन के स्थान पर य् श्रुति मिलती है - सागर -सायर, स्थित -ठीय ।
7. गद्य और पद्य की भाषा में अन्तर है - गद्य में सम्बोधन रूप ‘ए’ से और पद्य में ‘ओ’ से बनता है ।

इस प्राकृत में लगभग 45 ग्रंथ प्राप्त हैं जो तीसरी और छठी शताब्दी के बीच लिखे गए हैं ।

## महाराष्ट्री :

साहित्यिक प्राकृतों में महाराष्ट्री प्राकृत सर्वाधिक विकसित है । प्राकृत वैयाकरणों ने इसको आदर्श प्राकृत माना है और सबसे पहले उन्होंने ही इसका विवेचन किया । संस्कृत -नाटकों में प्राकृत -पद्य रचना प्रायः महाराष्ट्री में ही हुई है । डॉ. सुकुमार सेन आदि कुछ विद्वानों ने इसका क्षेत्र महाराष्ट्र (भारत का दक्षिण प्रांत) न मानकर पूरा भारत मानते हैं और महाराष्ट्र शब्द का अर्थ ही वृहत राष्ट्र (भारत) मान लेते हैं । काव्य भाषा के रूप में यह पूरे उत्तर भारत में प्रचलित रही है । कालिदास तथा हर्ष ने अपने नाटकों के गीत इसी भाषा में लिखे हैं । श्वेताम्बर मुनियों ने अपने गद्य ग्रंथों का सृजन इसी भाषा में किया है । गद्य की ही तरह पद्य की भी यह सम्मानित भाषा रही है । ‘गाहा सतसई’, ‘रावण वहो’ बज्जालग’ आदि इस प्राकृत की अमर काव्य कृतियाँ हैं । गीति, खंड -काव्य, महाकाव्य आदि सभी काव्य रूपों की प्रमुख भाषा होने के कारण यह अत्यन्त समृद्ध भाषा रही है । इसे परिनिष्ठित भाषा मान कर विद्वानों ने इसका विस्तृत वर्णन किया है एवं अन्य प्राकृतों के अन्तर को देखकर ‘शेषं महाराष्ट्रीवत्’ कहा है । ‘बज्जालग’ काव्य में जयवल्लभ ने इसे संस्कृत से अधिक मधुर बताया है ।

महाराष्ट्री प्राकृत की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि इसमें स्वर के मध्यम स्पर्श व्यंजनों का लोप हो गया है। स्वरमध्यम क्, त्, प्, ग्, द्, ब् पूर्णतया लुप्त हो गए हैं और ख्, थ्, फ्, ध्, भ् के स्थान पर केवल प्राण ध्वनि 'ह' बची रही है। यह परिवर्तन मध्य-भारतीय-आर्य भाषा के द्वितीय पर्व के विकास की चरमावस्था है। शौरसेनी एवं महाराष्ट्री प्राकृत में प्रमुख भिन्नता इसी परिवर्तन में है। अन्यथा महाराष्ट्री - प्राकृत शौरसेनी से बहुत अधिक साम्य रखती है। निस्संदेह महाराष्ट्री प्राकृत आधुनिक मराठी का पूर्ण रूप है और शौरसेनी से सादृश्य होने के अतिरिक्त इसमें आधुनिक मराठी के शब्द रूप भी विद्यमान हैं। डॉ. मनमोहन घोष के अनुसार महाराष्ट्री प्राकृत शौरसेनी का विकसित रूप है। इन दोनों प्राकृतों में भेद स्थानगत न होकर कालगत था। इसके बाद महाराष्ट्री प्राकृत दक्षिण पहुँची और काव्य भाषा बन गयी। वहाँ वह स्थानीय लोकभाषा से भी प्रभावित हुई, जिसके कारण इसने अनेक मराठी रूप अपना लिए। दक्षिण से यह भाषा उत्तर भारत में साहित्यिक भाषा के रूप में लौटी और इसमें प्रचुर साहित्य का निर्माण हुआ। इस प्रकार महाराष्ट्री प्राकृत शौरसेनी प्राकृत का ही विकसित रूप है। महाराष्ट्री प्राकृत की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं -

1. दो स्वरों के मध्यवर्ती अल्पप्राण स्पर्श (क् । त् । प् । ग् । द् । ब् । प्रायः लुप्त हो गए हैं जैसे प्राकृत - पाउऊ । गच्छति - गच्छइ ।
2. दो स्वरों के मध्यवर्ती महाप्राण व्यंजन (ख्, थ्, ध् आदि) ह ध्वनि में बदल गए जैसे - क्रोध - कोह । कथयसि - कहेहि । मुख-मुँह ।
3. दन्त्य तथा तालव्य ऊष्म ध्वनियों (स्, श्) के स्थान पर 'ह' मिलता है जैसे । तस्य - ताह । पाषाण - पाहाण ।
4. कर्मवाच्य का 'य' प्रत्यय 'इज्ज' में बदल गया, जैसे - गम्मते - गमिज्जइ ।
5. पूर्वकालिक क्रिया के रूप की रचना में 'ऊण' प्रत्यय का प्रयोग होता है, जैसे - पृष्ट्वा-पुच्छिऊण ।
6. अपादान एकवचन में साधारणतया - 'अहि' प्रत्यय लगता है, जैसे -दूरात्- दूराहि ।
7. अधिकरण एकवचन के रूप - 'म्मि' अथवा 'ए' के योग से बनते हैं, जैसे - लोके-लोए अथवा लोकेस्मिन्-लोअम्मि ।
8. 'आत्मन्' का प्रतिरूप महाराष्ट्री प्राकृत में 'अप्प' हुआ है ।

### 1.4.5 अपभ्रंश :

मध्य - भारतीय - आर्य - भाषा के विकास के अंतिम सोपान को 'अपभ्रंश' नाम से अभिहित किया जाता है । 'अपभ्रंश' मध्य भारतीय आर्य भाषा और आधुनिक आर्य भाषाओं के बीच की कड़ी है । प्रत्येक आधुनिक भारतीय आर्य भाषा को 'अपभ्रंश' की स्थिति पार करनी पड़ी है । अपभ्रंश की अन्तिम सीमा अवहट्ट भाषा है जो अपभ्रंश एवं आधुनिक आर्य भाषाओं के मध्य की कड़ी एवं सन्धिकालीन भाषा है । जैसे संस्कृत के साहित्यिक रूप में व्याकरण बद्ध कर देने पर जनभाषा ने प्राकृतों का रूप धारण कर लिए, वैसे ही ' प्राकृतों ' का भी जब साहित्यिक भाषा के रूप में प्रयोग होने लगा और वे नियम बद्ध कर दी गई तब देशी बोलियों का नया विकास होने लगा जिसके विकसित स्वरूप को 'अपभ्रंश' कहा गया ।

महाभाष्यकार पतंजलि ने लिखा है - (अपशब्द बहुत हैं, शब्द अल्प हैं, एक-एक शब्द के बहुत से अपभ्रंश हैं, जैसे 'गो' शब्द के 'गावी', 'गोणी', 'गोता', 'गोपोतलिका' आदि ।) 'शब्द' से आचार्य पतंजलि का तात्पर्य 'पाणिनीय' व्याकरण के सिद्ध शब्द से है और अपभ्रंश का प्रयोग उन्होंने 'अपशब्द' के समानार्थक के रूप में किया है ।

ईसा की छठी शताब्दी में प्राकृत - वैयाकरण चण्ड ने अपने ग्रंथ ' प्राकृत-लक्षणम् ' में अपभ्रंश शब्द का प्रयोग के अर्थ में किया है आचार्य भामह ने अपने 'काव्यालंकार' ग्रंथ में संस्कृत एवं प्राकृत के बाद अपभ्रंश को रखा है और आचार्य दण्डी ने 'काव्यादर्श' में अपभ्रंश को 'अभीरादिगिरः' कहकर आभीरों की भाषा बताया है । इससे स्पष्ट है कि ईसा की छठी शताब्दी तक 'अपभ्रंश' शब्द किसी भाषा के लिए प्रयुक्त होने लगा था और यह भाषा आभीर आदि जातियों में बोली जाती थी ।

ईसा की नवीं शताब्दी में आचार्य रुद्रट ने संस्कृत एवं प्राकृत के साथ 'अपभ्रंश' का उल्लेख करते हुए देशभेद से इसके अनेक भेद कहे हैं । इससे अपभ्रंश के विस्तार का पता चलता है । ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में प्राकृत- वैयाकरण पुरुषोत्तम ने 'अपभ्रंश' को शिष्ट -वर्ग की भाषा स्वीकार किया और बारहवीं शताब्दी में आचार्य हेमचन्द्र ने 'अपभ्रंश' का व्याकरण लिखा है । इस प्रकार ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी से 'अपभ्रंश' शब्द का प्रयोग भिन्न-भिन्न कालों में 'अपशब्द', 'विभाषा', 'लोकभाषा', 'शिष्ट भाषा एवं साहित्यिक भाषा के अर्थों में किया गया ।

डॉ. तिवारी के अनुसार लगभग तीसरी सदी तक विकृत -शब्दों को अपभ्रंश या विभ्रष्ट आदि कहा तो जाता था परन्तु किसी भाषा के अर्थ में इस प्रकार के अपभ्रंश शब्दों के अधिक प्रयोग के कारण ही वह भाषा भी अपभ्रंश या अपभ्रष्ट कही जाने लगी और स्वयं ये नाम भी अपभ्रंशित होकर

अबभ्रंस, अवहत्थ, अवहट्ट, अवहट्ट, अवहट्ट एवं अवहट्ट आदि रूपों में उस भाषा के लिए प्रयुक्त होने लगे । डॉ. उदय नारायण तिवारी ने अपभ्रंश का जन्मकाल सातवीं शती माना है । डॉ. भोलानाथ तिवारी अपभ्रंश का जन्म पाँचवीं शती स्वीकार करते हुए अपने पक्ष में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत करते हैं -

1. अपने ग्रंथ 'प्राकृत पैंगलम्' में भाषा के अर्थ में अपभ्रंश का प्रयोग छठी शताब्दी में चण्ड ने किया । उन्होंने इस शब्द का प्रयोग जिस सामान्य रूप से किया है उससे इसके प्रयाप्त प्रचलन की जानकारी मिलती है ।
2. छठी शताब्दी के ही आचार्य भामह ने संस्कृत और प्राकृत के साथ अपभ्रंश का प्रयोग करते हुए इसे काव्योपयोगी बताया ।
3. छठी शताब्दी के बल्लभी नरेश धरसेन (द्वितीय) के एक ताम्र लेख में तीन भाषाओं संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश का उल्लेख हुआ है ।

इन प्रमाणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि कोई भी भाषा जन्म लेते ही काव्य भाषा नहीं बन जाती । काव्य भाषा के पद पर आसीन होने के लिए उसे अपने जन्म के बाद करीब पचास-सौ साल लग जाते हैं । यद्यपि अपभ्रंश का प्रयोग दसवीं शताब्दी के बाद भी साहित्य में होता रहा तथा उसकी उत्तर-सीमा दसवीं सदी ही ठहरती है, क्योंकि 1000ई. के आस-पास हिन्दी आदि आधुनिक आर्य भाषाओं के जन्म और विकास के स्पेट प्रमाण हैं ।

### **अपभ्रंश की विभाषाएँ अथवा रूपभेद :**

ईसा की छठी शती से लगभग 12वीं शती तक अपभ्रंश का जो साहित्य मिलता है उसमें भाषागत भेद बहुत कम है । इसका पूरा साहित्य एक ही परिनिष्ठित - भाषा का है । उपलब्ध रचनाओं के आधार पर अपभ्रंश का क्षेत्र पूरा आर्य भाषा -भाषी भारत है । वस्तुतः अपभ्रंश प्राकृतों और आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के बीच की कड़ी है । वैयाकरणों ने और विशेष रूप से उत्तरकालीन वैयाकरणों ने अपभ्रंश के देश भेद से अनेक भेद बताए हैं । विष्णुधर्मोत्तरपुराणकार ने अपभ्रंश के तीन भेद माने हैं - उपनागर, आभीर और ग्राम्य । रुद्रट के 'काव्यालंकार' के टीकाकार नमिसाधु ने अपभ्रंश के तीन भेद बताए हैं - उपनागर, आभीर और ग्राम्य । मार्कण्डेय ने 'प्राकृतसर्वस्व' में नागर, उपनागर और ब्राचड़ तीन भेद दिये हैं । अपभ्रंश के व्याकरणकार पुरुषोत्तम ने 'प्राकृतानुशासन' में अपभ्रंश के चौदह भेदों का उल्लेख किया है - नागर, उपनागर, ब्राचड़, पांचाल, वैदर्भी, लाटी, ओड़ी, केकय, गौड़ी, टक्क, वर्बर, कुन्तल, पाण्ड्य, तथा सिंहला ।

आधुनिक काल के विद्वानों में डॉ. याकोबी ने अपभ्रंश के चार -पूर्वी, पश्चिमी, दक्षिणी और

उत्तरी भेद माने हैं । डॉ. नामवर सिंह ने इसके केवल पूर्वी और पश्चिमी दो भेद माने हैं । दक्षिणी भेद को उन्होंने व्यर्थ माना है । डॉ. तैगाड़े ने उत्तरी अपभ्रंश को अस्वीकार करते हुए इसके पूर्वी, पश्चिमी और दक्षिणी तीन भेद माने हैं । वास्तव में एक भाषा की अनेक विभाषाएँ होना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है । स्थानीय प्रभाव के कारण भाषा का रूप भिन्न-भिन्न स्थानों पर कुछ न कुछ भिन्न होता है । अतः अपभ्रंश के भी देशगत अनेक भेद रहे होंगे । अपभ्रंश साहित्य का विकास पश्चिमी मालवा, राजस्थान और गुजरात में हुआ । अतः इस प्रदेश की अपभ्रंश तत्कालीन साहित्यिक भाषा बन गई और बंगाल एवं दक्षिण में भी इस भाषा में साहित्य की रचना हुई । यही कारण है कि अपभ्रंश - साहित्य में एक ही परिनिष्ठित अपभ्रंश मिलती है किन्तु जिस प्रकार प्राकृतों के पाँच प्रमुख भेदों के अतिरिक्त अन्यान्य दूसरे भेद हैं, उसी प्रकार आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के आठ-दस भेद हैं, उसी प्रकार उन दोनों के मध्यवर्ती अपभ्रंश भाषा के भी अनेक क्षेत्रीय रूप प्रचलित रहे होंगे ।

डॉ. चटर्जी तथा डॉ. सेन आदि आधुनिक विद्वानों ने अपभ्रंश के ऐतिहासिक भेदों का उल्लेख करते हुए प्राचीन अपभ्रंश को अपभ्रंश तथा उत्तर अपभ्रंश को अवहट्ट नाम दिये हैं ।

क्षेत्रीय दृष्टि से अपभ्रंश के छह शौरसेनी, महाराष्ट्री अर्धमागधी, मागधी, ब्राचड़, पैशाची अथवा केकय-टक्क भेद माने गए हैं ।

### **अपभ्रंश की प्रमुख विशेषताएँ :**

1. भाषा श्लिष्ट योगात्मक से वियोगात्मक होने लगी ।
2. प्राकृत के सभी स्वर और व्यंजन ध्वनियाँ अपभ्रंश में हैं ।
3. वैदिक संगीतात्मक स्वर के स्थान पर बलाघात स्वर हो गया ।
4. सभी स्वरों का आधुनिक रूप (ऋ को छोड़कर) अपभ्रंश में भी है ।
5. अपभ्रंश में शब्दों के अन्त में उ लगाने की प्रवृत्ति बहुत बढ़ गई - अंगु, जगु, पुत्रु ।
6. दन्त्य -व्यंजन मूर्धन्य होने लगे ।
7. श और ष का प्रायः लोप हो गया ।
8. ए के इ, ई भी होने लगे - लेख - लिह, लीह ।
9. मध्यगत प्रथम और द्वितीय वर्ण के क्रमशः तृतीय और चतुर्थ वर्ण होते हैं । जैसे - शपथ -सबध । कथित -कधिदं ।
10. कहीं -कहीं मध्यगत 'म' को 'वँ' भी बोलते हैं - भ्रमर -बवँरु ।
11. संयुक्ताक्षरों में 'र' का प्रायः लोप होता है - प्रिय - पिउ । चन्द्र - चन्द ।



12. जहाँ 'र' नहीं है, वहाँ भी 'र' का आगमन हो जाता है । जैसे - व्याकरण -  
ब्रागरण ।
13. प्राकृत के तुल्य समीकरण, लोप, आगम आदि की प्रवृत्ति और बढ़ गई ।
14. संयुक्त व्यंजनों में एक व्यंजन का लोप और पूर्ववर्ती ह्रस्वस्वर दीर्घ होता है, जैसे  
- कस्य -कासु । तस्य -तासु ।
15. शब्द रूप और धातु रूप बहुत कम हो गए हैं ।
16. विभक्तियों के स्थान पर कारक -चिह्न (परसर्ग) आने लगे, जैसे -  
करण -सहुं । संप्रदान - केष्टि, रेशि । अपादान - होन्त । संबंध - केर, कर ।  
अधिकरण -मऽङ्ग , महे ।
17. नपुंसक लिंग शब्द समाप्त हो गए ।
18. अकार पुल्लिंग शब्दों के तुल्य अधिकांश शब्द रूप चलने लगे ।
19. शब्दरूपों में बहुत संक्षेप हो गया । सभी कारकों के स्थान पर तीन कारक -समूह  
रह गए - 1) कर्त्ता-कर्म, संबोधन ।  
2) करण, अधिकरण ।  
3) संप्रदान, अपादान, संबंध ।  
अतः शब्द रूप में छह रूप रह गए ।  
- 3 कारक X 2 वचन ,संस्कृत में 26 रूप थे ,प्राकृत में 12 ।
20. द्विवचन का पूर्णतया अभाव है ।
21. धातु रूपों में आत्मनेपद का अभाव है ।
22. धातु रूपों में प्रायः लट्, लोट्, लृट् ही शेष रहे ।
23. ये छह तद्धित प्रत्यय प्रयुक्त होने लगे ।  
1) उ- पुनः -पुणु ।  
2) एं या अ- अवश्यं - अक्सें, अवस ।  
3) आर, तुहार, अम्हार ।
24. द्राविड़ एवं विदेशी भाषा के बहुत शब्द भी आ गए ।
25. वाक्यों में पदक्रम निश्चित हो गया । इससे विभक्ति लोप -जन्य अस्पष्टता कुछ  
कम हो गई ।

## अवहट्ट :

अपभ्रंश का यह रूप अपभ्रंश और आधुनिक आर्य भाषाओं की योजक कड़ी रही है। इसे हम सन्धिकालीन भाषा भी कह सकते हैं। 900से 1100 ईस्वी के बीच इसका विशेष प्रचलन मिलता है। 'संदेश -रासक' उक्ति -व्यक्ति- प्रकरण, 'वर्ण रत्नाकर', 'कीर्तिलता' आदि अवहट्ट की साहित्यिक कृतियाँ हैं। इसे देशी भाषा भी कहा गया है। इसकी निम्नलिखित विशेषताएँ हैं -

1. अपभ्रंश की ध्वनियों के साथ-साथ 'ऐ' और 'औ' नयी ध्वनियों का विकास हुआ। अ-इ, अ-उ ध्वनियाँ भी ऐ -औ में परिवर्तित हो गयी थीं - भुजपति - भुक्वै। चतुःहाटक - चौहट्ट।
2. 'ऋ' और 'ष' ध्वनि लिखने में तो व्यवहृत थी, किन्तु उच्चारण में ये ध्वनियाँ 'रि' तथा 'श' रूप में परिवर्तित हो गयी थी।
3. ल्ह, म्ह तथा न्ह ध्वनियाँ प्रचलित थीं।
4. 'स्वर - संकोचन' की सामान्य प्रवृत्ति विद्यमान थी जैसे -मयूर -मऊर और अन्धकार -अन्धओर -अन्धार।
5. अकारण अनुनासिकता चल पड़ी थी - अश्रु -अस्सु - अंसु - आँसू।
6. शब्द के अंत्य स्वर ए - ओ ह्रस्व होकर इ -उ हो गए, जैसे - क्षणे -खणे -खणि, परः - परो -परू।
7. स्वर मध्यम 'म' प्रायः 'व' हो जाता है जैसे - सम - सँव।
8. पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग के रूपों में समानता आ गयी थी।
9. एह - नेह तथा केह जैसे नए सर्वनाम प्रयुक्त होने लगे।
10. संयुक्त क्रिया का प्रयोग बढ़ गया।

शब्दों की दृष्टि से एक ओर तद्भव शब्दों की सामान्य प्रवृत्ति है और दूसरी ओर हिन्दू धर्म के शब्द तत्सम् रूप में हैं। पुनर्जागरण के कारण तत्सम शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति भी बढ़ती गई। साथ ही मुसलमानों के भारत- प्रवेश के कारण विदेशी शब्दों - अरबी- फारसी, तुर्की के शब्दों के प्रयोग भी अधिकाधिक देखने को मिलते हैं। देशी शब्दों के प्रति मोह के कारण साहित्य में इनका प्रयोग भी देखने को मिलता है।

### अभ्यास प्रश्न :

1. संस्कृत साहित्य और भाषा का परिचय दीजिए ।
2. वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए ।
3. पालि भाषा की उत्पत्ति संस्कृत से हुई है सिद्ध कीजिए ।
4. अपभ्रंश भाषा और साहित्य हिंदी साहित्य के आदिकाल का सूचक है प्रमाणित कीजिए ।
5. संस्कृत से हिंदी तक भाषा के सरलीकरण की प्रक्रिया को समझाइए ।

-----

## UNIT - II

### हिंदी का भौगोलिक विस्तार , हिंदी की उपभाषाओं और बोलियों का सामान्य परिचय

#### इकाई की रूपरेखा

- 2.1 उद्देश्य
- 2.2 प्रस्तावना
- 2.3 पूर्वी हिंदी तथा पश्चिमी हिंदी में तात्विक अंतर
- 2.4 हिंदी की उपभाषाएँ
- 2.5 हिंदी की बोलियाँ

## UNIT - II

### हिंदी का भागौलिक विस्तार, हिंदी की उपभाषा और बोलियों का सामान्य परिचय

#### 2.1 उद्देश्य :

इस इकाई में हिंदी भाषा का भौगोलिक विस्तार, हिंदी की उपभाषा और उसकी बोलियों की सामान्य चर्चा की गई है। हिंदी भाषा व्यापक क्षेत्र की भाषा है, जिसमें थोड़े अन्तर के साथ पाँच उपभाषाएँ हैं। इन्हें उपभाषाएँ इसलिए कहा गया है कि प्रत्येक उपभाषा की अपनी बोलियाँ तथा उपबोलियाँ हैं। इसके अतिरिक्त पहाड़ी उपभाषा को छोड़कर शेष सभी का किसी न किसी क्षेत्र में साहित्य भी प्राप्त होता है। इस इकाई को पढ़ने के बाद -

- \* हिन्दी भाषा के क्षेत्र -निर्धारण के बारे में विभिन्न विद्वानों के मत को समझ सकेंगे।
- \* पूर्वी हिन्दी तथा पश्चिमी हिन्दी में ध्वनिगत तथा व्याकरणात्मक अन्तर को समझ सकेंगे।
- \* विभिन्न बोलियों के विकास, उसका क्षेत्र एवं उसके बोलने वालों की संख्या के संबंध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- \* विभिन्न उपभाषाओं में प्राप्त होने वाले साहित्य एवं साहित्यकारों के बारे में समझ सकेंगे।
- \* बिहारी एवं पहाड़ी उपभाषा की बोलियों के सम्बन्ध में भी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

#### 2.2 प्रस्तावना :

‘सिन्ध’ से फारसी में ‘हिन्द’ बनती है। जैसे ‘सप्त’ से ‘हप्त’। बाद में सिन्ध और हिन्द की परिभाषा में भेद किया गया। सिन्ध नदी के दक्षिण सिरे पर दाहिने बाएँ बसे हुए क्षेत्र ने सिन्ध कहलाया। सिन्धु नदी के पार उत्तर और दक्षिण में अपनी प्राकृतिक सीमाओं तक और पूर्व में राजनीतिक सीमा तक के विशाल देश का नाम हिन्द पड़ा। हिन्द की भाषा का नाम हिन्दी है। इसी अर्थ में 11वीं शती में फिरदौसी और अलबरूनी, 14वीं शती में अमीर खुसरो, 16वीं शती में अब्दुलफजल आदि ने हिन्दी शब्द को ग्रहण किया। हिन्दी भाषा के निम्नलिखित नाम गिनाए गए - देहलवी, बंगाली, मुलतानी, मारवाड़ी, गुजराती, तिलंगी, मरहट्टी, कर्नाटकी, सिन्धी, अफगानी, विलोचिस्तानी और कश्मीरी। अरबी साहित्य में हिन्दी का अर्थ है ‘हिन्द की भाषा’। संस्कृत के

पंचतंत्र का अरबी अनुवाद 'करिलादमना' की भूमिका में यह लिखा गया है कि यह पुस्तक हिन्दी से अरबी में अनूदित हुई है। हिन्दी और हिन्दवी का अर्थ एक ही है। हिन्दी की व्युत्पत्ति हिन्द से हुई और हिन्दवी की हिन्दू से। हिन्द के निवासी ही हिन्दू कहलाए। हिन्दुस्तान का अर्थ है हिन्दुओं का देश। हिन्द, हिन्दी, हिन्दू, हिन्दवी, हिन्दुस्तान, हिन्दुस्तानी - ये सब नाम मुसलमान आगन्तुकों द्वारा दिए गए हैं। बाद में उन्हें जब ये अनुभव हुआ कि पूरे हिन्द की भाषा एक नहीं है तो विशिष्ट अर्थ में मध्यदेश की भाषा को हिन्द कहने लगे। वास्तव में मध्यदेश की भाषा ही हिन्द की भाषा है क्योंकि साहित्य रचना भी इसी भाषा में होती थी। मध्ययुग के आरंभ में सिन्धी लाहौर, बंगला, गुजराती आदि मात्र बोलियाँ थी किन्तु हिन्दी सार्वदेशिक भाषा थी। पंजाबी, बंगला, गुजराती, सिन्धी आदि भाषाओं का जो साहित्य तब था वह वस्तुतः लोकसाहित्य था। गुजरात के नरसी मेहता, महाराष्ट्र के तुकाराम, नामदेव, पंजाब के नानक और अन्य सिख गुरुओं ने उसी सार्वदेशिक भाषा में साहित्य की रचना की। साथ ही साधारण जन के लिए उन्होंने अपनी रचनाएँ लोकभाषाओं में कीं।

संकुचित अर्थ में 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग कब से होने लगा, कुछ ठीक ठीक कहा नहीं जा सकता। पश्चिमी भारत में नागर अपभ्रंस में अनेक ग्रंथों की रचना हुई। यही शौरसेनी अपभ्रंश कहलाई और इसी शौरसेनी अपभ्रंश से हिन्दी का विकास हुआ। आज से एक हजार वर्ष पहले हिन्दी ही अंतः प्रादेशिक भाषा के रूप में ही अखिल उत्तर भारत में फैली थी और सभी आर्य भाषी लोगों में पढ़ी पढ़ाई और लिखी जाती थी। धीरे-धीरे मध्यदेश की दो भाषाएँ अपभ्रंश की वारिस बनी - आगरा और ग्वालियर की ब्रज भाषा और दिल्ली की खड़ी बोली। कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, बिहारी ने इस भाषा में काव्य की रचना की और इसको 'भाषा' या 'भाखा' कहते रहे। अठारहवीं शताब्दी के मध्य में मुसलमानों ने इसमें अरबी फारसी शब्दों का अनुपात बढ़ाना शुरू किया जिसे वे रेख्ता हिन्दी और बाद में केवल 'रेख्ता' कहते थे। रेख्ता हिन्दी की वह शैली कहलाई जिसमें अरबी-फारसी शब्दों का सम्मिश्रण हो। रेख्ता उर्दू का पर्यायवाची नहीं है। बहुत बाद में इसको उर्दू कहा जाने लगा। इस शब्द का और अपनी इस नई शैली का उन्होंने इतना अधिक प्रचार किया कि बहुत से लोग हिन्दी को उर्दू कहने लगे। और इस प्रकार उर्दू का विकास शुरू हुआ। सन् 1800 ई में स्थापित फोर्ट विलियम कॉलेज के अधिकारियों ने हिन्दी को हिन्दुओं की, उर्दू को मुसलमानों की और हिन्दुस्तानी को सामान्य जन की भाषा कहना अपनी साम्राज्यवादी नीति का अंग समझा। फलस्वरूप शब्द के अर्थ में और थोड़ा संकोच आ गया, किन्तु राष्ट्रीय जागरण के साथ पुनः अर्थ विस्तार हुआ। कम से कम भाषा में साम्प्रदायिकता का भाव नहीं रहा। उर्दू अलग साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई और इसी कारण खड़ी बोली हिन्दी ने भी मानक हिन्दी के रूप में अपना स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित किया। यही कारण है कि आधुनिक काल में हम खड़ी बोली में ही साहित्य सृजन का व्यापक विस्तार देखते हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी अत्यंत प्राचीन काल से मध्यदेशीय भाषाओं संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी रही है । अपनी पूर्वज भाषाओं की मध्यदेश की अपेक्षा हिन्दी का मध्यदेश अधिक विस्तृत है क्योंकि ये भाषाएँ मध्यदेशीय होते हुए भी देशव्यापी नहीं हैं । किन्तु देश में केन्द्र से दूर के प्रदेशों में हिन्दी को राजभाषा का दर्जा नहीं मिला । फलस्वरूप हिन्दी का क्षेत्र संकुचित हो गया, फिर भी इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि हिन्दी का मध्यदेश आज बहुत बड़ा है । डॉ. ग्रियर्सन के अनुसार पश्चिम में अम्बाला (पंजाब) से लेकर पूर्व में बनारस तक और उत्तर में नैनीताल की तलहटी से लेकर दक्षिण में बालाघाट तक हिन्दी की बोलियाँ बोली जाती हैं । इससे स्पष्ट है कि ग्रियर्सन राजस्थानी और बिहारी बोलियों का हिन्दी से सम्बन्ध नहीं माना है । किन्तु पिछले पचास-साठ सालों में इन भाषाओं का सम्बन्ध हिन्दी से अधिक स्पष्ट हुआ है , और ऐसा प्रतीत होने लगा कि डॉ. ग्रियर्सन ने हिन्दी के साथ राजस्थानी और बिहारी बोलियों का हिन्दी के साथ सम्बन्ध को ठीक से नहीं आँक पाए । आज हिन्दी के उच्चकोटि के साहित्यिकारों और विद्वानों की दृष्टि से देश की धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिस्थिति एवं टेलीविजन, मिडिया एवं पत्र -पत्रिकाओं के प्रचार -प्रसार के कारण हिन्दी को एक बहुत बड़े क्षेत्र में फैलने का अवसर मिला । आज यदि डॉ. ग्रियर्सन जीवित होते तो उन्हें स्वीकार करना पड़ता कि राजस्थानी और बिहारी बोलियाँ भी हिन्दी के अन्तर्गत हैं । हिंदी के कुछ विशिष्ट विद्वानों के अनुसार वास्तविकता तो यह है कि राजस्थानी के अन्तर्गत मारवाड़ी और जयपुरी तथा बिहारी के अन्तर्गत मागधी और मैथिली बोलियाँ तो हैं किन्तु भाषाओं में उनका स्थान नहीं है । इनकी न कोई अपनी लिपि है , न साहित्य । राजकार्य की भाषा पत्राचार की भाषा हिन्दी ही रही है । डॉ. श्याम सुन्दर दास का कथन है - 'साहित्यिक तथा राष्ट्र की दृष्टि से राजस्थानी को हिन्दी की भाषा माना जा सकता है, पर भाषाशास्त्र की दृष्टि से यह एक स्वतंत्र भाषा है । राजस्थानी हिन्दी की अपेक्षा गुजराती के अधिक निकट है । ये दोनों भाषाएँ वास्तव में परस्पर इतनी सम्बद्ध है कि दोनों को एक भाषा की दो विभाषाएँ मानना अनुचित न होगा । आजकल ये दो स्वतंत्र भाषाएँ मानी जाती हैं । दोनों में स्वतंत्र साहित्य की रचना हो रही है । राजस्थानी की स्वयं चार बोलियाँ हैं - मेवाती, मालवी, मारवाड़ी और जयपुरी । इस प्रकार भाषाशास्त्र की दृष्टि से हम राजस्थानी को हिन्दी की बोली नहीं मान सकते । साहित्यिक दृष्टि से अवश्य राजस्थानी साहित्य की गणना हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत होती है ।' डॉ. राजनाथ शर्मा ने बिहारी वर्ग की भाषाओं के सम्बन्ध में कहा है ' मैथिली बिहारी एक बोली मानी जाती है । यह गंगा के उत्तर में दरभंगा के आस पास बोली जाती है । इस बोली में प्रसिद्ध कवि मैथिली -कोकिल विद्यापति ने अपनी प्रसिद्ध पदावली लिखी थी । साहित्यिक दृष्टि से और विशेष रूप से अपनी पदावली के कारण विद्यापति को भी हिन्दी वाले अपना कवि मानते हैं । परन्तु भाषाशास्त्र की दृष्टि से हिन्दी को केन्द्रीय अथवा मध्यदेशीय वर्ग में माना जाता है और बिहारी को

वहिरंग वर्ग में । इस प्रकार दोनों में एकता असंभव है । मैथिली भाषा का तो हिन्दी से तनिक भी सम्बन्ध नहीं है । अतः भाषाशास्त्र की दृष्टि से उसे हम हिन्दी की बोली किसी भी दशा में नहीं मान सकते । इस प्रकार विद्वानों का एक वर्ग राजस्थानी और बिहारी भाषाओं को हिन्दी भाषा परिवार के अन्तर्गत स्वीकार करता है तो दूसरा वर्ग इन्हें स्वतंत्र भाषा का गौरव प्रदान करता है । हिन्दी के कुछ विद्वानों ने राजस्थानी और बिहारी को हिन्दी की उपभाषा सिद्ध करने के लिए कुछ अन्य तत्व जैसे - उत्पत्ति, ध्वनि तथा व्याकरणिक सम्बन्ध की मान्यता के भी ढूँढ निकाला है ।

ध्वनि की दृष्टि से हिन्दी मैथिली के अधिक निकट है । डॉ. श्यामसुन्दर दास के अनुसार - “मैथिली” में ‘स’ का उच्चारण ‘श’ न होने के कारण ही इसे हिन्दी परिवार के अन्तर्गत माना है । मैथिली में ‘स’ ध्वनि का उच्चारण ठीक उसी तरह होता है जिस तरह हिन्दी में बोली जाती है । राजस्थानी में ‘ण’ को छोड़ कर हिन्दी ध्वनियों में अन्य कोई पार्थक्य नहीं है ।” आचार्य किशोरी दास बाजपेयी के शब्दों में - “हिन्दी की सब बोलियाँ तद्धिततीय प्रत्यय ‘क’ तथा ‘के’ विभक्ति की सूचना लिए हुए हैं और यही ऐसा तत्व है जो हिन्दी की सब बोलियों को एक टोली में लाता है ।” राजस्थानी में ‘इन का/के/की/ परसर्गों का प्रयोग और मैथिली में भी - राम क सुत, नन्द क सुत प्रत्यय का प्रयोग स्पष्ट है । इन प्रत्ययों के अभाव में ही मराठी, पंजाबी हिन्दी से पृथक होती हैं और इसी रूप में राजस्थानी, बिहारी हिन्दी की उपभाषाएँ सिद्ध होती हैं और इसी रूप में राजस्थानी के भाषा शास्त्रीय अध्ययन के उपरान्त डॉ. श्यामसुन्दर दास इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ‘राजस्थानी भाषा पर गुजराती का प्रभाव पड़ा है । संज्ञाओं के कारक रूपों में यह गुजराती से बहुत मिलती है, पश्चिमी हिन्दी से नहीं । राजस्थानी की विभक्तियाँ अलग हैं जहाँ कहीं समानता है वहाँ गुजराती से अधिक पश्चिमी हिन्दी से कम ।” इसी प्रकार बिहारी की भाषाओं पर अपना मत व्यक्त करते हुए डॉ. उदयनारायण तिवारी का कथन है - “वस्तुतः ऐतिहासिक दृष्टि से बिहारी बोलने वालों का सम्बन्ध उत्तरप्रदेश से भी अधिक रहा है । उत्तर प्रदेश की ब्रजभाषा का मध्ययुग में बिहार में पर्याप्त आदर था और आज भी नागरी हिन्दी अथवा खड़ी बोली समस्त बिहार की शिक्षा का माध्यम है, तथा इसका सम्बन्ध बंगला, ओड़िआ तथा असमिया से है ।” डॉ. दास तथा तिवारी के विचारों से यह स्पष्ट होता है कि राजस्थानी और बिहारी की उपभाषाएँ भाषाशास्त्र की दृष्टि से तो हिन्दी के क्षेत्र से पृथक पड़ती हैं । किन्तु साहित्यिक दृष्टि से अवश्य हिन्दी से सम्बद्ध हो जाती हैं ।

### 2.3 पूर्वी हिन्दी तथा पश्चिमी हिन्दी में तात्विक अन्तर :

भाषा शास्त्र के विद्वानों में हिन्दी भाषा के क्षेत्रों के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद दृष्टिगोचर होता है । डॉ. जार्ज ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक ‘ए लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया’ में आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का जो वर्गीकरण किया है उसे देखने पर विदित होता है कि राजस्थानी एवं बिहारी



(मैथिली, मगही तथा भोजपुरी) उपभाषाएँ हिन्दी क्षेत्र से बाहर हैं। डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने भी इसको हिन्दी क्षेत्र में स्पष्टतः स्वीकार नहीं किया है। और डॉ. उदयनारायण तिवारी ने भी इन्हीं दोनों विद्वानों का अनुसरण करते हुए उक्त दोनों उपभाषाओं को हिन्दी क्षेत्र के बाहर ही माना है।

इन तीनों विद्वानों के अनुसार हिन्दी -क्षेत्र में पश्चिमी हिन्दी (खड़ी बोली, बाँगरु, ब्रजभाषा, कन्नौजी तथा बुन्देली) और पूर्वी हिन्दी (अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी) मानी जा सकती है। किन्तु डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने औचित्य का ध्यान रखते हुए हिन्दी क्षेत्र के सम्बन्ध में यह मत स्पष्ट किया है कि “इस भूमि भाग की सीमाएँ पश्चिम में जैसलमेर, उत्तर पश्चिम में अम्बाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल के पूर्वी छोर तक के पहाड़ी प्रदेश का दक्षिणी भाग, पूर्व में भागलपुर, दक्षिण पूर्व में रायपुर तथा दक्षिण पश्चिम में खंडवा तक पहुँचती है।”

वास्तव में देखा जाय तो डॉ. वर्मा का मत ही सर्वथा उचित और मान्य है। भारतीय संविधान में भी उक्त समस्त भूभाग में हिन्दी को ही एकमात्र प्रथम साहित्यिक भाषा स्वीकार किया गया है। अभिप्राय यह है कि पूर्वी पंजाब, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश और बिहार इन सातों राज्यों का सम्मिलित भूभाग हिन्दी भाषा का क्षेत्र है।

उपर्युक्त दोनों भाषाओं में अन्तर का आधार भूगोल तथा इतिहास है। भौगोलिक दृष्टि से पश्चिमी हिन्दी ‘पंजाबी, राजस्थानी, पहाड़ी, पूर्वी हिन्दी तथा मराठी भाषाओं के बीच में है। अतः उसमें इन भाषाओं की कुछ बातें न्यूनाधिक रूप से मिलती हैं। दूसरी ओर पूर्वी ‘हिन्दी’ पहाड़ी, बिहारी, ओड़िआ, मराठी तथा पश्चिमी हिन्दी के बीच की है, अतः उसमें इनकी विशेषताएँ अंशतः समाहित हैं। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक दृष्टि से पश्चिमी हिन्दी शौरसेनी अपभ्रंश से उद्भूत है और पूर्वी हिन्दी अर्द्धमागधी से विकसित हुई है। अतः इन दोनों में उक्त दो भिन्न-भिन्न अपभ्रंशों की परम्परागत विशेषताओं का मिलना स्वाभाविक है। इस प्रकार दोनों में भौगोलिक तथा ऐतिहासिक परिवेश का अन्तर स्पष्ट है, साथ ही इन भाषाओं में निम्नलिखित तात्विक अन्तर भी स्पष्ट है -

1. ध्वनि उच्चारण तथा शब्द रूप की दृष्टि से - ध्वनि की दृष्टि से दोनों में बड़ा अन्तर। अ। के उच्चारण में है। अ। उ। उच्चारण पश्चिमी हिन्दी में पूर्वी हिन्दी की अपेक्षा अधिक विवृत होता है। अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी और पश्चिमी भोजपुरी में भी अ। उ। का उच्चारण विवृत ही होता है। परन्तु मगही, मैथिली और पूर्वी भोजपुरी में इसका उच्चारण कुछ विलम्बित ढंग से किया जाता है। क्योंकि उधर बंगला का कुछ प्रभाव विद्यमान रहता है। पश्चिमी हिन्दी पर पंजाबी का प्रभाव विद्यमान होने के कारण अ। उ। के उच्चारण में अधिक विवृतता आ जाती है। तात्पर्य यह है कि पूर्व से ज्यों ज्यों पश्चिम की ओर बढ़ते जाते हैं, त्यों-त्यों अ। उ। का उच्चारण क्रमशः अधिक विवृत होता जाता है।

2. पश्चिमी हिन्दी में - ह्रस्व । इ । तथा ह्रस्व । उ । का उच्चारण दीर्घ । ई । तथा । ऊ । के अधिक निकट है, परन्तु पूर्वी हिन्दी (भोजपुरी) में । इ । तथा । उ । अधिक ह्रस्व है । पश्चिमी हिन्दी वालों को वे प्रायः । अ । जैसे सुनाई पड़ते हैं, इही प्रकार पूर्वी हिन्दी विशेष रूप से शब्दान्त ह्रस्व इ-उ का उच्चारण दीर्घ ई-ऊ जैसा लगता है । उदाहरण स्वरूप -

पश्चिमी हिन्दी - घोड़ा, नारी, बड़ा, मोटा ।

पूर्वी हिन्दी- घोड़, नारि, बड़, मोट ।

3. पूर्वी हिन्दी में - प्रायः दो स्वरों । अ+इ । अ+उ । के एक साथ आने पर कोई बन्धन नहीं, जैसे - दुइ, कउन, अउर, अइसा आदि किन्तु पश्चिमी हिन्दी में एक साथ प्रायः दो स्वर नहीं आते । एक साथ आने वाले स्वरों में संधि हो जाती है । जैसे - दो, कौन, और, ऐसा आदि ।

पश्चिमी हिन्दी के संयुक्त स्वर (ऐ-ओ) धीरे-धीरे मूल स्वर (ऐ-औ) के रूप में विकसित हो गए । पश्चिमी हिन्दी के संयुक्त स्वर (ऐ-औ) पूर्वी हिन्दी तथा भोजपुरी में प्रायः अइ-अउ के रूप में उच्चारित होते हैं और कभी-कभी ए-ओ रूप में भी आ जाते हैं, किन्तु मूल स्वर रूप में कभी नहीं आते ।

4. पश्चिमी हिन्दी की । ड । ढ । मूर्धन्य ध्वनियाँ पूर्वी हिन्दी के अधिकांश शब्दों में क्रमशः । र । रह । में परिवर्तित हो जाती है । जैसे- पश्चिमी हिन्दी -तोड़ना, आषाढ़ । पूर्वी हिन्दी - तोरना, असारह । किन्तु कुछ शब्दों में यह परिवर्तन नहीं भी होता है -जैसे -पश्चिमी हिन्दी - बाढ़, पूर्वी हिन्दी - बाढ़ि ।

5. पश्चिमी हिन्दी के कई शब्दों के । ल । के स्थान पर पूर्वी हिन्दी में । र । प्राप्त होता है जैसे - पश्चिमी हिन्दी - फल, हल्दी, जला पूर्वी हिन्दी में - फर , हरदी, जरा ।

यहाँ यह जानना आवश्यक है कि वास्तव में पूर्वी हिन्दी में तो पश्चिमी हिन्दी के सभी शब्दों के । ल । के स्थान पर । र । मिलना चाहिए था । क्योंकि पूर्वी हिन्दी मागधी अपभ्रंश से प्रभावित है । किन्तु ऐसा सर्वत्र न होने का कारण यह है कि उस पर पश्चिमी हिन्दी का पर्याप्त प्रभाव है ।

6. पश्चिमी हिन्दी के शब्द मध्यवर्ती 'ह' का प्रायः लोप हो जाता है । किन्तु पूर्वी हिन्दी में इसका सन्ध्यक्षर रूप विद्यमान रहता है । जैसे - पश्चिमी हिन्दी - दिया । पूर्वी हिन्दी - दिहलसी, देहेसि, दीहिसि आदि ।

7. पश्चिमी हिन्दी में शब्द के आदि में । य । व । का प्रयोग प्राप्त होता है, किन्तु पूर्वी हिन्दी में क्रमशः । ए । ओ । में बदल जाते हैं । जैसे - पश्चिमी हिन्दी ब्रजभाषा - यामे, वामे । पूर्वी हिन्दी - एमे, वोमे । पूर्वी हिन्दी में बीच में । ह । का आगम द्रष्टव्य है -

अवधी में उक्त रूप । ओहियाँ । तथा भोजपुरी में । ऐहमे । तथा ओहि में ।

8. पश्चिमी हिन्दी में जहाँ पर । ए-ऐ । ओ-औ । होते हैं, वहाँ पर पूर्वी - हिन्दी में प्रायः । अई ।। अउ । प्राप्त होते हैं, जैसे पश्चिमी हिन्दी- कहै, मोर-और पूर्वी हिन्दी - कहइ, मउर, अउर । भोजपुरी में 'अऊर' के साथ 'अवर' शब्द भी प्रयोग में आता है । इसका कारण यह है कि पश्चिमी हिन्दी में दो स्वर एक साथ प्रयुक्त नहीं होते किन्तु पूर्वी हिन्दी में ऐसी स्थिति नहीं है । उसमें एक साथ दो स्वर प्रयुक्त हो सकते हैं ।

9. पश्चिमी हिन्दी के आकारान्त (खड़ी बोली रूप) और ओकारान्त (ब्रजभाषा रूप) पूर्वी हिन्दी में या तो अकारान्त हो जाते हैं अथवा व्यजनान्त । जैसे -पश्चिमी हिन्दी - बड़ा, भला । ब्रजभाषा - बड़ौ, बड़ो, भलौ, भलो । पूर्वी हिन्दी - बड़, बड़, भल, भल् ।

### सर्वनाम शब्दों के रूप :

1. पश्चिमी हिन्दी में सम्बन्ध सूचक और सहसम्बन्ध वाचक सर्वनाम । जो । सो । तथा प्रश्न सूचक सर्वनाम । कौन । का परिवर्तन पूर्वी हिन्दी में क्रमशः । जे -जबन । ते - तबन ।, के -कबन । में हो जाता है ।

2. उत्तम पुरुष सम्बन्ध कारक एक वचन में पश्चिमी हिन्दी का । मेरा । शब्द पूर्वी हिन्दी में । मोर । हो जाता है । तात्पर्य यह है कि अधिकार वाचक सर्वनामों में पश्चिमी हिन्दी का । ए । पूर्वी हिन्दी में । ओ । हो जाता है ।

3. पश्चिमी हिन्दी में उत्तम पुरुष एकवचन में । मैं । तथा बहुवचन में । हम । (खड़ी बोली का रूप ) का प्रयोग होता है , परंतु पूर्वी हिन्दी में । मैं । तो चलता नहीं , इसके स्थान पर एक वचन में भी । हम । ही चलता है और इसका बहुवचन । हम लोगन । या । हमनी का । बनता है ।

### परसर्गों के प्रयोग में :

पश्चिमी हिन्दी तथा पूर्वी हिन्दी में परसर्गों की भिन्नता निम्न रूप में है -

| पश्चिमी हिन्दी                                   | पूर्वी हिन्दी                    |
|--|----------------------------------|
| कर्त्ता - । न । ने, । नैं । नैं                  |                                  |
| कर्म - । क । ख । कु । । कुं । कूं । को । कौ      | का । कां । कहं । के । को         |
| करण - अपादान - । सी । सूं । से । सो । तै । तैं । | से । ते । सेनी । ले । सन । तैं । |
| सम्बन्ध - । का । के । की । को । कौ               | । क । कर । को । की । के । केर ।  |
| अधिकारण - । में । मैं । पर । पे । पै । मांहि     | । मं । म्हं । मां । पर ।         |

वस्तुतः परसर्गों में सबसे भेदक अन्तर कर्ताकारक में है । पश्चिमी हिन्दी में ।ने ।नै । आदि परसर्ग आते हैं, किन्तु पूर्वी हिन्दी में कोई परसर्ग नहीं आता, जैसे पश्चिमी हिन्दी (खड़ीबोली) उसने मारा तथा पूर्वी हिन्दी (अवधी) उ मारिस । ने । परसर्ग का प्रयोग पश्चिमी हिन्दी की एक प्रमुख विशेषता है ।

पूर्वी हिन्दी में परसर्गों पर समंभवतः बलाघात नहीं पड़ता है, अतएव यत्र-तत्र निकटस्थ पूर्व भाग में स्थित संज्ञा अथवा सर्वनाम रूपों के साथ वे जुड़ते जा रहे हैं । योग की इस प्रकार की प्रवृत्ति को भाषाओं के अकृतिमूलक वर्गीकरण के अन्तर्गत भाषा की 'संयोगात्मक स्थिति' कहा गया है । अतएव पश्चिमी हिन्दी की प्रवृत्ति ठीक इसके विपरित वियोगात्मक की ओर ही जायेगी ।

जैसे - पश्चिमी हिन्दी में - उसने किया ।

अवधी में - उ किहि सि ।

भोजपुरी में - उ कइलसि ।

मैथिली में - उ कइलक ।

### क्रिया रूप :

क्रिया रूपों की दृष्टि में पूर्वी हिन्दी और पश्चिमी हिन्दी में पर्याप्त अन्तर है ।

जैसे - पश्चिमी हिन्दी (खड़ी बोली) - मैं हूँ ।

पूर्वी हिन्दी - अवधी - अहेउँ, बाटेउँ,

भोजपुरी - बाटों, बाटी, बानी इत्यादि ।

1. क्रियार्थक संज्ञा - पश्चिमी हिन्दी में प्रायः । न । ण । वाले रूप जैसे - पढ़ना, लिखना । चललणा । बोलणा । आदि चलते हैं । पूर्वी हिन्दी में यह रूप बिल्कुल नहीं चलते । इनके स्थान पर केवल । ब । वाले रूप जैसे - चलब । देखब । सुनब । लिखब । आदि चलते हैं ।

2. भविष्यत्काल - पश्चिमी हिन्दी में प्रायः । ग । वाले रूप प्रयुक्त होते हैं, किन्तु पूर्वी हिन्दी में । ग । वाले रूप कभी नहीं चलते, जैसे - -पश्चिमी हिन्दी । चलेगा । होगा । पड़ेगा ।

पूर्वी हिन्दी - वहाँ चली-चलति है । देखी -देखि है । होइ - होइ है । आदि आते हैं ।

पश्चिमी हिन्दी - मैं मारूंगा (खड़ी बोली )

ब्रजभाषा - मारिहौं ।

पूर्वी हिन्दी अवधी में - मारबूं

भोजपुरी में - मारबो । मरबाँ ।

उन्नाव की अवधी में ब्रजभाषा का रूप । मारिहौं । ही चलता है । लगता है यह ब्रज भाषा का प्रभाव है । बघेली में । मारव्येउ । और छत्तीसगढ़ी में । मारिहौं । रूप चलता है । यह रूप प्रायः भोजपुरी में चलता है । ऐसे ही अनेक रूपों का उदाहरणार्थ ग्रहण कर सकते हैं ।

3. सहायक क्रिया -पश्चिमी हिन्दी में सहायक क्रियाओं में वर्तमान काल में । ह । वाले रूप - । है । हैं । हूँ । हौ । हो आते हैं, भूतकाल में । था । या । है । (था-हव) वाला रूप - । था । सो । हतो । बनते हैं । पूर्वी हिन्दी में वर्तमान काल में सहायक क्रिया के कुछ । ह । वाले रूपों - । है । हैं । हौं । के अतिरिक्त । बार । वाले रूप - बारें । बारें । बारी । भी आते हैं । इसी प्रकार भूतकाल में केवल । रह । वाले रूप - । रही । रहो । रहें । रहन । आदि चलते हैं ।

4. पश्चिमी हिन्दी का भूतकाल संस्कृत में भूतकालिक कृदन्त के कर्मवाच्य के रूप में विकसित है, जैसे -संस्कृत में । मारितः । शौरसेनी प्राकृत में । मारयो । ब्रज में । मारयौ । कन्नोजी में । मार्यो । पंजाबी में मारिआ । बांगड़ में । मारया । खड़ी बोली में । मारा । पूर्वी हिन्दी के रूप भी इनसे ही संबंधित हैं, किन्तु उनके अंत्य प्रत्यय पूर्वी भाषाओं भोजपुरी आदि के हैं । जैसे -मारेउ, मारिस, या मारस ।

इस प्रकार भूतकाल तथा भविष्यत् काल के रूपों के आधार पर पूर्वी हिन्दी का स्थान शौरसेनी तथा मागधी के बीच का सिद्ध होता है । इसके विपरित पश्चिमी हिन्दी शौरसेनी की ही परम्परा पर ही आगे बढ़ती जा रही है ।

### **कारक रूप :**

इन दोनों वर्गों की भाषाओं के कारक रूपों में भी भिन्नता मिलती है ।

1. पश्चिमी हिन्दी में मूल रूप एक ही होता है, किन्तु पूर्वी हिन्दी में अनेक शब्दों के । वा । युक्त । दीर्घरूप तथा । बान । वाला दीर्घतर रूप भी होते हैं,

जैसे - पश्चिमी हिन्दी - घोड़ा, लड़का ।

पूर्वी हिन्दी में 1 .- घोड़, घोड़ा, लरिका ।

2. - दीर्घ रूप - घोड़वा, लरिकया ।

3. - दीर्घतर रूप - घोड़वान, लरिकवान ।

2. पश्चिमी हिन्दी में आकारान्त पुल्लिंग का रूप कर्त्ता में सुरक्षित रहता है ।

किन्तु तिर्यक रूप प्रायः । ए । में परिणत हो जाता है । (लड़के, घोड़े) आदि । पूर्वी हिन्दी में कर्ता तथा तिर्यक दोनों आकारान्त ही बने रहते हैं जैसे - घोड़ा, लड़का आदि ।

|                |       |        |
|----------------|-------|--------|
| पश्चिमी हिन्दी | कर्ता | तिर्यक |
|                | घोड़ा | घोड़े  |
| पूर्वी हिन्दी  | घोड़ा | घोड़ा  |

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ध्वनि उच्चारण एवं शब्द रूप की दृष्टि से, सर्वनाम शब्दों के रूप, परसर्गों के प्रयोग, क्रिया रूपों में पूर्वी हिन्दी एवं पश्चिमी हिन्दी में पर्याप्त अन्तर है । पूर्वी हिन्दी के संबंध में संक्षेप में कहा जा सकता है कि संज्ञा तथा सर्वनाम के विषय में यह मागधी भाषाओं तथा बोलियों से साम्य रखती है । किन्तु क्रिया पदों के सम्बन्ध में यह मध्यम वर्ग का अनुसरण करती है । यह शौरसेनी तथा मागधी दोनों के रूपों को अपनाती है और इस प्रकार यह प्राचीन -अर्द्ध मागधी का यथार्थ प्रतिनिधि है । और पश्चिमी हिन्दी का क्षेत्र वस्तुतः प्राचीन मध्यप्रदेश है । पश्चिमी हिन्दी की उत्पत्ति, सीधे शौरसेनी अपभ्रंश से हुई है । प्राकृतों में शौरसेनी संस्कृत की निकटतम भाषा है । वस्तुतः पश्चिमी हिन्दी उस केन्द्र की भाषा है, जिससे आर्य संस्कृति का प्रचार-प्रसार हुआ है । पश्चिमी हिन्दी खड़ी बोली की सबसे बड़ी विशेषता है, उसका अत्यधिक विश्लेषणात्मकता । संज्ञा के रूपों में यह इतनी विश्लेषणात्मक है कि इसमें कर्ता तथा तिर्यक दो प्रकार के रूप ही उपलब्ध हैं । इसके रूप में विभिन्न अनुसर्ग लगाकर इसके अन्य कारकों के रूप तिर्यक सम्पन्न होते हैं । इसमें कर्त्तरि, कर्मणि तथा भावे तीनों प्रकार के प्रयोग मिलते हैं । इसमें वास्तव में केवल एक ही काल-संभाव्य वर्तमान का प्रयोग होता है इसकी एक उपभाषा नागरी हिन्दी से साहित्यिक तथा राष्ट्रभाषा - हिन्दी की उत्पत्ति हुई है ।

## 2.4 हिन्दी की उपभाषाएँ :

ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी प्रदेश में पाँच प्राकृतें थीं - अपभ्रंश, शौरसेनी, अर्द्धमागधी, मागधी और खश । अपभ्रंश से राजस्थानी हिन्दी, शौरसेनी से पश्चिमी हिन्दी, अर्द्धमागधी से पूर्वी हिन्दी, मागधी से बिहारी हिन्दी और खश से पहाड़ी हिन्दी का विकास हुआ और आज जिसे हम हिन्दी भाषा के नाम से जानते हैं वह इन्हीं पाँच प्राकृतों की उत्तराधिकारिणी विभाषाओं का संघ है । हिन्दी भाषा में पाँच वर्ग बनाने के मुख्य आधार हैं- इनके प्रत्येक वर्ग की बोलियों की सामान्य विशेषताएँ, जिनके सहारे इनका वैज्ञानिक अध्ययन करने में सुविधा होती है और प्रत्येक उपभाषा की सामान्य विशेषताएँ हैं जो अपनी एक अलग पहचान बनाती हैं । इन्हें उपभाषाएँ इसलिए कहा गया है

कि प्रत्येक उपभाषा की अपनी बोलियाँ तथा उपबोलियाँ हैं । इसके अतिरिक्त पहाड़ी हिन्दी को छोड़ कर शेष सभी उपभाषाओं का किसी न किसी बोली में अपना साहित्य भी प्राप्त होता है । राजस्थानी की मारवाड़ी और जयपुरी बोली में, पश्चिमी हिन्दी की ब्रजभाषा और कौरवी(खड़ी बोली) बोलियों में, पूर्वी हिन्दी की अवधी बोली में और बिहारी की मैथिल बोली में उच्चकोटि का साहित्य प्राप्त होता है । मध्यदेश की यदि कोई बोली आगे बढ़कर भाषा की पदवी प्राप्त करती है तो वह है हिन्दी । यहाँ पहले राजस्थानी डिंगल को साहित्यिक भाषा का रूप प्राप्त हुआ, उसके बाद ब्रज भाषा को और अब खड़ी बोली(कौरवी) को यह मान्यता प्राप्त हुई है । कुछ समय के लिए अवधी की संभानाएँ भी बहुत अधिक लगी किन्तु तुलसी के बाद अवधी भाषा में कोई बड़ा साहित्यकार नहीं हुआ । ब्रजभाषा और खड़ी बोली को छोड़कर और किसी भी बोली को अपने क्षेत्र की सीमा से बाहर साहित्य का माध्यम नहीं बनाया गया । ब्रज भाषा करीब 300 वर्षों तक मध्यदेश की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित रही है । खड़ी बोली का अस्तित्व हमें संत कवियों की वाणी में और अमीर खुसरो के लोकप्रिय चुटकुलों में दिखलाई पड़ता है । किन्तु तब यह सिर्फ बोली मात्र थी । आज वर्तमान युग में इसकी जैसी व्यापकता किसी दूसरी भाषा या बोली को प्राप्त नहीं हो सकी । वास्तव में देखा जाय तो उस जमाने की जो भाषा थी वह बोली बनकर रह गई और जो बोली थी वह भाषा के पद पर आसीन हो गई । हिन्दी एक विस्तृत क्षेत्र की भाषा है । विभिन्न विद्वानों ने इसके क्षेत्र की चर्चा इस प्रकार की है -

डॉ. त्रिभुवन सिंह की मान्यता है - “ यथार्थतः हिन्दी की व्याप्ति अखण्ड भारत में हो, इसकी स्पृहा भारतीय संविधान में व्यक्त हो गई, तथापि सत्ता लोलुपता एवं राजनैतिक स्वार्थपरता के कारण संविधान का यह स्वप्न साकार नहीं हो सकता ।

पुनः डॉ. त्रिभुवन सिंह के अनुसार - “हिन्दी भारत वर्ष के एक बहुत विशाल प्रदेश की भाषा है । इसका प्रचार राजस्थान और पंजाब की पश्चिमी सीमा से लेकर बिहार के पूर्वी सीमान्त तथा उत्तर प्रदेश की उत्तरी सीमा से मध्यदेश के मध्य तक है । इस विशाल क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले अनेक राज्यों की साहित्यिक भाषा को ‘हिन्दी’ के नाम से जाना जाता है । हिन्दी के नाम से जितना साहित्य उपलब्ध है, यद्यपि सबका भाषा शास्त्रीय ढाँचा एक जैसा नहीं है, क्योंकि इतने विशाल क्षेत्र में अनेकता के अनेक कारण विद्यमान हैं, फिर भी अनेकता में एकता स्थापित करने वाले साहित्यिक प्रयत्नों के लिए व्यवहृत भाषा को विद्वानों ने हिन्दी की संज्ञा दी है ।”

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा का मत है - “ शब्दार्थ की दृष्टि से हिन्दी शब्द का प्रयोग हिन्दी या भारत में बोली जाने वाली किसी भी आर्य, द्रविड़ अथवा अन्य कुल की भाषा के लिए हो सकता है, किन्तु आजकल वास्तव में इसका प्रयोग उत्तरभारत के मध्यदेश के हिन्दुओं की साहित्यिक भाषा के अर्थ

में होता है। इस भूमि भाग की सीमाएँ पश्चिम में जैसलमेर, उत्तर-पश्चिम में अम्बाला, उत्तर में शिमला, नेपाल के पूर्वी छोर के पहाड़ी प्रदेश का दक्षिण भाग, पूर्व में भागलपुर, दक्षिण में रायपुर तथा दक्षिण-पश्चिम में खण्डाला तक पहुँचती है।” सन् 1812 ई. में फोर्ट विलियम कॉलेज के कैप्टेन टेलर ने स्पष्ट कहा है - “मैं केवल हिदुस्तानी या रेखता का जिक्र कर रहा हूँ, जो फारसी लिपि में भी लिखी जाती है, मैं हिन्दी का जिक्र नहीं कर रहा हूँ, जो फारसी लिपि में भी लिखी जाती है, मैं हिन्दी का जिक्र नहीं कर रहा हूँ, जिसकी अपनी लिपि है। जिसमें अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग नहीं होता और मुसलमानी आक्रमण से पहले जो भारत के समस्त उत्तर-पश्चिम प्रान्त की भाषा थी।” इस कथन से हिन्दी और उसके क्षेत्र का और भी अधिक स्पष्टीकरण हो जाता है। इस प्रकार ‘उर्दू’ को छोड़कर बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, दिल्ली, पंजाब, हिमालय प्रदेश के कुछ भागों की संपूर्ण बोलियाँ एवं भाषाएँ हिन्दी के अन्तर्गत आ जाती हैं। इस दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि हिन्दी के अन्तर्गत पाँच उपभाषाएँ और अठारह बोलियाँ आती हैं, जिनका उल्लेख डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने निम्न प्रकार से किया है -

- 1) पूर्वी हिन्दी इनकी तीन बोलियाँ हैं -
  - i) अवधी,      ii) बघेली,      iii) छत्तीसगढ़ी।
- 2) पश्चिमी हिन्दी - इसकी छः बोलियाँ हैं -
  - i) बाँगरु, ii) कौरवी, iii) ब्रज, iv) कनौजी, v) बुन्देली, vi) निमाड़ी
- 3) राजस्थानी उपभाषा - इसकी चार बोलियाँ हैं -
  - i) मेवाती-अहीरवाटी,      ii) मालवी, iii) जयपुरी-हाड़ौती,
  - iv) मारवाड़ी-मेवाड़
- 4) बिहारी उपभाषा - इसकी तीन बोलियाँ हैं -
  - i) भोजपुरी      ii) मगही      iii) मैथिली
- 5) पहाड़ी उपभाषा - इसकी दो बोलियाँ हैं -
  - i) पश्चिमी पहाड़ी,      ii) मध्य पहाड़ी

## पूर्वी हिन्दी :

इसका दूसरा नाम कोसली भी है। इसका क्षेत्र पश्चिमी हिन्दी और बिहारी के बीच का है। यह प्रदेश मागधी और शौरसेनी का सन्धि-स्थल था। इन दोनों ही प्राकृतों और उनसे जन्मी अपभ्रंशों का प्रभाव इस प्रदेश की भाषा पर पड़ा है। इस प्रदेश की भाषा का नाम पहले से ही



अर्द्धमागधी प्राकृत तथा अर्द्धमागधी अपभ्रंश रहा है। इसी से पूर्वी हिन्दी जन्मी है। अर्द्धमागधी नाम की विशेषता यह है कि इस पर शौरसेनी से अधिक मागधी का प्रभाव रहा है। तभी इसे अर्द्धशौरसेनी न कह कर अर्द्धमागधी नाम दिया गया है। जैन साहित्य का अधिकांश सृजन इसी अर्द्धमागधी प्राकृत और उसकी तद्भव अपभ्रंश में हुआ है।

उत्तरकोसल की बोली अवधी और दक्षिणकोसल की छत्तीसगढ़ी है। इन दो खण्डों के बीच में शताब्दियों तक बघेल राजपूतों का राज्य रहा है। बघेलखंड की एक राजनीति इकाई होने के कारण उसकी बोली बघेलखंडी या बघेली को भी लोग एक अलग बोली मानते हैं किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाय तो बघेली को अवधी की ही एक उपबोली मानना होगा। कुछ भाषा वैज्ञानिक भोजपुरी को भी पूर्वी हिन्दी की एक बोली मानते हैं। इसकी मुख्य तीन बोलियाँ हैं - अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी। अवधी को ही कोसली कहते हैं। पूर्वी हिन्दी की समस्त बोलियों में अवधी प्रधान है। साहित्य की दृष्टि से यह बहुत ही संपन्न बोली है। इसमें उच्चकोटि का विपुल साहित्य मिलता है। वास्तव में इसे बोली न कह कर भाषा ही कहना चाहिए। भगवान श्री राम चन्द्र का जन्म इसी भूमि में हुआ। गोस्वामी तुलसी दास ने अपने 'रामचरितमानस' ग्रंथ की रचना इसी भाषा में की है। अतः बहुत प्राचीनकाल से इस प्रदेश की भाषा को महत्व दिया जाता रहा है। जैन धर्म के प्रवर्तक महावीर स्वामी ने अर्द्धमागधी में ही जनता को शांति का संदेश दिया। मुसलमान शासनकाल में -सूफ़ी कवियों -कुतुबन, मंझन, जायसी, उसमान, जान, नूरमुहम्मद आदि कवियों ने ठेठ अवधी में अपने-अपने काव्यों की रचना की। मानदास, बाबारामदास और महाराज रघुराजसिंह का रामभक्ति काव्य साहित्यिक अवधी में लिखा गया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भी कवि और लेखकों ने अवधी भाषा को ही काव्य सृजन का माध्यम बनाया। इसकी लिपि देवनागरी ही है। कभी-कभी कैथी लिपि का प्रयोग कर लिया जाता है। पूर्वी हिन्दी कानपुर से मिर्जापुर तक, और लखीमपुर नेपाल की सीमा से दुर्ग-बस्तर की सीमा तक के क्षेत्र में बोली जाती है। इसके बोलने वालों की संख्या लगभग चार करोड़ है। समानता की दृष्टि से जितना घनिष्ठ सम्बन्ध इस उपवर्ग की बोलियों में है, उतना किसी अन्य हिन्दी उपभाषा की बोलियों में नहीं है।

1. ण की जगह न का प्रयोग होता है।
  2. । श। ष। के स्थान पर । स। बोला जाता है।
  3. । ड।ड़। सहस्वन हैं।
  4. शब्द के मध्य अथवा अन्त में । ड। नहीं होता।
  5. प्रायः हिन्दी के शब्दों का । ल। परिवर्तित होकर । र। हो जाता है।
- जैसे थाली -थारी। हल - हर। कल - कर। आदि

6. | य | व | का उच्चारण क्रमशः ज | ए और | व | उ | होता है ।  
जैसे - जेह -ऐह | वकील - उकील आदि में
7. महाप्राण ध्वनियाँ शुद्ध और स्पष्ट हैं ।
8. इन बोलियों में उच्चारणगत पड़ापन है, अर्थात् शब्द के अन्त में तान में अवरोह हो जाता है । अ | कुछ -कुछ संवृत तथा वृत्ताकार होता है । | ऐ | औ | संयुक्त स्वर हैं, जैसे - मैल, कौन, का उच्चारण मइल, कउन करके होता है ।
9. संज्ञा का रूप तिर्यक एकवचन में तथा अविकृत बहुवचन में मूल एकवचन वाला बना रहता है ।
10. कर्तृकारक परसर्ग 'ने' नहीं होता और सकर्मक -अकर्मक क्रिया के साथ कर्ता के रूप में कोई अन्तर नहीं पाया जाता ।  
कर्म कारक में | के | , सम्बन्ध में | के | केर | सम्प्रदान में | के | करे | करण, अपादान में | से | और अधिकरण में | माँ | परसर्ग लगते हैं ।
11. सर्वनामों में हम, तुम का अर्थ एकवचन होता है । जउन (जो), तउन(सो, के | कउन (कौन) सर्वत्र एक जैसे प्रयोग में लाए जाते हैं ।
12. इन बोलियों में क्रिया के रूप कुछ अधिक जटिल होते हैं । बहुत से तिङ्तीय रूप अभी तक अवशिष्ट हैं और दूसरे क्रिया के साथ सार्वनामिक प्रत्यय लगते हैं जैसे - आइतई(मैं आता हूँ), करत्या (तू करता).ऊ पूछिस(उसने उससे पूछा), भोज देहलिस, अन्यत्र-वो देहिस (उसने उसको दिया ) आदि ।
13. भविष्यत् काल में | ह | ब | दोनों रूप प्रचलित हैं । जैसे -जैसे हम पूर्व की ओर बढ़ते जाते हैं विशेषण और क्रिया का लिंग भेद लुप्त हो जाता है । विदेशी शब्दावली का प्रभाव कम है ।

## पश्चिमी हिन्दी :

मध्यदेश की भाषा पश्चिमी हिन्दी है । इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है । इसको नागरी हिन्दी भी कहते हैं । पश्चिमी हिन्दी का क्षेत्र पश्चिम में पंजाबी और राजस्थानी की सीमा से लेकर पूर्व में अवधी और बघेली की सीमा तक एवं उत्तर में पहाड़ों की सीमा से दक्षिण में मराठी की सीमा तक चला गया है । इस क्षेत्र में हरियाणी या बांगरु , कौरवी या खड़ीबोली, ब्रजभाषा, बुंदेली या बुन्देलखंडी , और कनौजी ये पाँच बोलियाँ बोली जाती हैं । इस क्षेत्र के बाहर दक्षिण में बम्बई, मद्रास और हैदराबाद के आस-पास जो हिन्दी मुसलमानों द्वारा प्रयोग में लाई जाती है उसका संबंध

भी इसी वर्ग से है। उस बोली को दक्खिनी हिन्दी कहा जाता है। इन छः बोलियों को दो उपवर्गों में बाँटा जा सकता है। आकारबहुला -हरियाणा, कौरवी और दक्खिनी और 2- ओकारबहुला - ब्रजभाषा, बुंदेली, कन्नौजी। प्रथम वर्ग की बोलियों पर पंजाबी का प्रभाव अधिक है। इनमें कौरवी या खड़ी बोली प्रधान है। वास्तव में हरियाणी दक्खिनी को समानता के आधार पर कौरवी की ही उपबोली मानना चाहिए। दूसरे उपवर्ग में ब्रजभाषा प्रमुख है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से कन्नौजी और बुन्देली ब्रजभाषा की ही उपबोलियाँ होनी चाहिए। हरियाणी में पंजाबी के तत्व, दक्खिनी में तेलगू और मराठी के तत्व एवं कन्नौजी तथा बुन्देली में पूर्वी हिन्दी के तत्व कुछ अधिक आ गए हैं। किन्तु इसी कारण जो थोड़ा बहुत अन्तर आ गया है वही इनको उपबोलियाँ बनाता है। इन बोलियों में समानता इतनी अधिक है कि इन्हें अलग-अलग बोलियों की संज्ञा देना भी ठीक नहीं होगा।

खड़ी बोली के हिन्दी तथा उर्दू दो रूप हो गए हैं। भारतीय संविधान में यह भाषा राजभाषा पद के लिए स्वीकृत हो चुकी है। खड़ी बोली का प्रयोग मेरठ तथा बिजनौर जिलों में बहुत अधिक होता है। वास्तव में यह प्रदेश बहुत समय से राजनीतिक तथा व्यापारिक केन्द्र रहा है। यही कारण है कि यहाँ इसका प्रसार इतनी तीव्र गति से हुआ। यह प्रदेश मुसलमान शासकों का मुख्य केन्द्र था। हिन्दी के विकास के प्रथम तथा द्वितीय काल में पद्य रचना ही अधिक हुई। 19 वीं सदी में आकर कुछ गद्य प्रयोग देखने को मिलते हैं। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम भी इसी हिन्दी प्रदेश में खड़ी बोली के माध्यम से अत्यधिक क्रियाशील रहा। हिन्दी भाषा के विकास में नया युग या वर्तमान काल बहुत महत्वपूर्ण रहा है। इसके आर्थिक सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक सभी प्रकार के परिवर्तनों ने भाषा को प्रभावित किया है। इसकी दो प्रमुख विशेषताएँ हैं :

1. साहित्यिक गद्य के रूप में भाषा का विकास
2. संपूर्ण साहित्य परम्परा का खड़ी बोली में संक्रमण।

खड़ी बोली में विपुल साहित्य मिलता है। आधुनिक भाषाओं के विभाजन को हमने आधुनिक काल तक परिसीमित किया है परंतु हिन्दी भाषा के विकास का तृतीय चरण वास्तव में स्वतंत्रता प्राप्ति तक होना चाहिए। इसके पश्चात् आधुनिक काल के रूप में कोई नया नामकरण होता है। क्योंकि इस काल में हिन्दी भाषी क्षेत्रों में उद्योगों का विकास बहुत तीव्र गति से हुआ है। साथ ही साथ साहित्य की सभी विधाओं में भाषा का विकास भी हुआ है। संपूर्ण भारत प्रशासनिक दृष्टि से एक हो गया। सन् 1956 के नए प्रशासनिक विभाजन के आधार पर हिन्दी भाषी जनता का क्षेत्र उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार, दिल्ली तथा आंशिक से पंजाब है। राजस्थान सरकार ने सरकारी कामकाज के लिए एवं साहित्यिक भाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार किया है। इस काल में आकर समाचार पत्रों के प्रकाशन एवं पत्र-पत्रिकाओं की संख्या पहले से बहुत बढ़ गई है। सभी भारतीय

भाषाओं को राजकीय संरक्षण प्राप्त हुआ । इस समय तक आते-आते हिन्दी भाषा और उनकी बोलियों का अन्तर बहुत कम हो गया । संक्षेप में पश्चिमी हिन्दी की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं -

1. पश्चिमी हिन्दी में उच्चारणगत खड़ापन है । अर्थात् तान से थोड़ा आरोह होता है ।
2. । अ । विवृत है । ऐ । औ । मूलस्वर हैं : संयुक्त स्वर अइ । अउ । इनसे भिन्न है ।
3. । ण । और । श । का उच्चारण स्पष्ट होता है, बल्कि । ख । श । ज । । फ । भी प्रचलित हैं ।
4. आकार बहुला बोलियों में । ड । की अपेक्षा । ड । और । न । की अपेक्षा । ण । अधिक बोला जाता है ।
5. ओकर बहुला बोलियों में । ण । की जगह । न ।, श । की जगह । स ।, ड । की जगह । र । अधिक व्यापक है ।
6. । य । और । व । ध्वनियाँ सबमें पाई जाती हैं ।
7. महाप्राण ध्वनियों की महाप्राणता दब जाती है । जैसे - भी, नहीं, भूख, धंदा के स्थान पर बी, नई, भूक, धंदा आदि ।
8. आ । ओकारान्त पुल्लिंग संज्ञाओं का तिर्यक एकवचन एकरान्त हो जाता है । बाकि का मूल रूप तिर्यक में अपरिवर्तित रहता है ।
9. तिर्यक बहुवचन में आकारबहुला बोलियों में 'ओ' और ओकारबहुला उपवर्ग की बोलियों में 'अन' होता है ।
10. कर्ताकारक -ने, कर्म कारक- को, और सम्बन्ध में को । का । के । की । विशिष्ट परसर्ग हैं ।
11. ओकारान्त या अकारान्त संज्ञा, विशेषण, और क्रियापद, लिंग और वचन के अनुसार बदलते हैं, जैसे -पुं- बड़ो छोरो गयो । या बड़ा छोरा गया' स्त्री -बड़ी छोरी गयी । बहुवचन पु. बड़े छोरे गए । स्त्री-बड़ी छोरियाँ गर्थी । पश्चिमी हिन्दी बोलने वालों की संख्या चार करोड़ के लगभग हैं ।

### 3. राजस्थानी हिन्दी :

राजस्थान प्रदेश की भाषा राजस्थानी है । वर्तमान में यह हिन्दी की उपभाषा के रूप में जानी जाती है । मध्यदेश के अधिक निकट होने के कारण शौरसेनी भाषा का प्रभाव इस पर पड़ा है । ब्रजभाषा के साहित्य में प्रतिष्ठित होने से पूर्व हिन्दी प्रदेश में डिंगल (प्राचीन राजस्थानी) साहित्य का

बोलबाला था । राजस्थानी की मुख्य चार बोलियाँ हैं -मेवाती, जयपुरी, मारवाड़ी और मालवी । मेवाती को ही मेवाड़ी कहते हैं । यह बोली उत्तरपूर्वी राजस्थान की है । इसके बोलने वालों की संख्या लगभग 15 लाख है । जयपुरी बोली पूर्वी मध्य राजस्थान की है । इसकी अन्य बोलियाँ अजमेरी एवं हाड़ौती हैं । इसके बोलने वालों की संख्या लगभग 30 लाख है । मारवाड़ी पश्चिमी राजस्थान की बोली है यह मुख्य रूप से जोधपुर, बीकानेर , जैसलमेर तथा उदयपुर में बोली जाती है । इसके बोलने वालों की संख्या लगभग 60 लाख है । मालवा प्रदेश के चारों ओर मालवी बोली का प्रचार है । इसका मुख्य केन्द्र इन्दौर है । इसके बोलने वालों की संख्या लगभग 43 लाख है । कुल मिलाकर राजस्थानी भाषा को बोलने वाले लगभग दो करोड़ पंद्रह लाख हैं ।

उपर्युक्त बोलियों के अतिरिक्त 'भीली' उपभाषा जो करीब बीस लाख लोगों के विचारों के आदान-प्रदान की बोली है । यह राजस्थानी की उपभाषा है । तमिल प्रदेश में प्रचलित सौराष्ट्री तथा पंजाब और कश्मीर के प्रदेश में व्यवहृत होने वाली गूजरी भी राजस्थानी सीमा के अन्तर्गत आती है । व्यक्तिगत व्यवहार में राजस्थानी की महाजनी लिपि प्रचलित है । मारवाड़ी लोगों में व्यापार-विस्तार के कारण मारवाड़ी लिपि संपूर्ण उत्तर भारत में फैली हुई है । राजस्थानी साहित्य में बड़े-बड़े प्रतिभाशाली कवि हुए हैं । जिनमें 'चंदबरदाई, दुरसाजी, बांकी दास, मुरारीदान, सूर्यमल्ल प्रमुख हैं । वीसलदेव रासो, ढोलामारूरादूहा, और बेलि क्रिसन रुकमिणी री आदि शृंगाररस के प्रसिद्ध ग्रंथ हैं । मीरा, दादू, चरणदास, हरिदास आदि संत कवियों की बोलियाँ भी महत्वपूर्ण हैं । गद्य साहित्य में बचनिकाओं, आख्यातों और बातों की अपनी विशाल परम्परा है । अधिकतर साहित्य मारवाड़ी में लिखा गया है । थोड़ा साहित्य जयपुरी में भी प्राप्त होता है । इसकी बोलियों और उपबोलियों की कुल संख्या तीस है । भीली (अनार्य) गुजराती और राजस्थानी का सम्मिलित रूप है । भीली बोलने वालों की संख्या 22 लाख अलग है । राजस्थानी की सामान्य विशेषताएँ निम्न लिखित हैं -

1. राजस्थानी उपभाषा । ड । वर्ग वर्ग बहुला है, । ल । ण । ड । अधिक प्रयुक्त होते हैं ।
2. मालवी में । ड । की अपेक्षा । ड । अधिक प्रयुक्त होता है ।
3. अल्पप्राणीकरण के उदाहरण बहुत मिल जाते हैं ।
4. । य । और । व । का उच्चारण होता है ।
5. उत्तर -पश्चिमी और दक्षिणी बोलियों में । च । का । स , । ज । का । ज और । झ । का । ज्ह । उच्चारण उल्लेखनीय है ।
6. इन्हीं बोलियों में । स । का । ह । हो जाता है, जैसे -सेठ का हेट, सौ का हौं,

7. पश्चिमी हिन्दी की तुलना में राजस्थानी व्याकरण में ओकारान्त पुलिंग एक वचन का बहुवचन और तिर्यक एकवचन आकारान्त होता है । शेष सब प्रकार के शब्द बहुवचन और तिर्यक एकवचन में बदलते नहीं हैं । जैसे तारों से तारा, किन्तु बादल, घोड़ी आदि का रूप यही बना रहता है । बहुवचन के अन्त में -आँ आता है, जैसे - ताराँ, बादलाँ, राताँ आदि ।
8. कर्म -सम्प्रदान के कारक - नै, नई, रे । करण -अपादान - का, सूँ । सम्बन्ध - से, रा, री, मारवाड़ी में तथा शेष बोलियों में को, का, की, व्यापक परसर्ग हैं ।
9. सर्वनामों और क्रियाओं के रूप ब्रजभाषा से मिलते -जुलते हैं । अन्तर यही है कि बहुवचन में । ए ।एँ ।या ।ऐ ।नहीं बल्कि ।आँ ।आता है, जैसे - म्हें हाँ(हम हैं), इणाँ(इन्हें) था, थे, थी के लिए हो, हा, ही बिलकुल ब्रजभाषा की तरह है । संज्ञार्थक क्रिया, आज्ञार्थभाव, प्रेरणार्थक क्रिया, कृदन्त आदि ब्रजभाषा के समान है, अन्तर केवल उच्चारण का है ।

#### 4. बिहारी हिन्दी :

बिहारी बिहार प्रदेश की भाषा है । बिहार का राजनैतिक, धार्मिक, शैक्षिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक, साहित्यिक सम्बन्ध उत्तर प्रदेश के साथ रहा है और अब भी है, बल्कि उत्तर प्रदेश के लोग अब भी बिहार के अनेक जिलों में जाकर रहते हैं परन्तु यहाँ की भाषा बंगला भाषा के अधिक निकट है । इसका आविर्भाव मागधी अपभ्रंश से हुआ है । इसकी तीन प्रमुख बोलियाँ हैं - मैथिली, मगही और भोजपुरी । डॉ. ग्रियर्सन ने पश्चिमी मागधी बोलियों का बिहारी नामकरण किया । बिहारी से डॉ. ग्रियर्सन का तात्पर्य उस एक भाषा से है जिसकी मगही, मैथिली और भोजपुरी तीन बोलियाँ हैं । बिहारी नामकरण के निम्नलिखित कारण हैं -

1. पूर्वी हिन्दी तथा बंगला के बीच में बिहारी की अपनी विशिष्टताएँ हैं जो मैथिली, मागधी और भोजपुरी तीनों बोलियों में समान रूप से वर्तमान हैं ।
2. भाषा के अर्थ में है । ई । प्रत्ययान्त, बिहारी नाम की गुजराती, पंजाबी, मराठी आदि की श्रेणी में आ जाता है ।
3. ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह नाम उपयुक्त है । बौद्ध -बिहारों के नाम पर ही इस प्रदेश का नाम बिहार पड़ा । प्राचीन बिहारी भाषा ही वस्तुतः बौद्धों तथा जैनों की भाषा थी ।
4. बिहार में साहित्य का सर्वथा अभाव है, ऐसी बात नहीं है । उत्तरी बिहार की भाषा

मैथिली में प्राचीन साहित्य उपलब्ध है । मैथिली बोली की अपनी अलग लिपि है, जो बंगला के निकट है । भोजपुरी और मागधी कैथी लिपि में लिखी जाती है । बिहारी भाषा बनारस, मिर्जापुर, गाजीपुर, बलिया, जौनपुर, गोरखपुर, देवरिया, आजमगढ़ तथा बस्ती जिलों की जनता द्वारा प्रयुक्त होती है ।

बिहारी का वर्गीकरण पहले के विद्वानों ने बीच की भाषा पूर्वी हिन्दी की बोलियों में - अवधी, बघेली तथा छत्तीसगढ़ी के साथ किया । इसके कई कारण थे । वस्तुतः ऐतिहासिक दृष्टि से बिहारी भाषा बोलने वालों का सम्बन्ध उत्तर प्रदेश से ही अधिक है । समय समय पर उत्तर प्रदेश की विभिन्न जातियाँ ही बिहार में जाकर बस गईं और बिहार की होकर रह गईं । बिहारी भाषा -भाषी बन गईं । विवाह आदि सम्बन्ध की दृष्टि से भी बिहार का सम्बन्ध उत्तरप्रदेश से अधिक रहा । उत्तर प्रदेश की ब्रज भाषा का मध्य युग में बिहार में पर्याप्त आदर था और आज भी नागरी हिन्दी अथवा खड़ी बोली समस्त बिहार की शिक्षा का माध्यम है । राजनीति की दृष्टि से बिहार बंगला का ही एक भाग था साथ ही दोनों मातृभाषाओं का स्रोत वस्तुतः एक ही है । बंगला भाषा-भाषियों ने बिहारियों को पश्चिमी तथा उनकी भाषा को हमेशा 'पश्चिमी -हिन्दी' की ही एक विभाषा माना । किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि बिहारी पूर्वी हिन्दी से पृथक भाषा है तथा इसका सम्बन्ध बंगला, ओड़िआ तथा असमिया से है ।

बिहार तथा बंगाल में केवल भाषा सम्बन्धी एकता ही नहीं है, अपितु दोनों में सांस्कृतिक एकता का भी दृढ़ सम्बन्ध है । जिस प्रकार बंगाल शक्ति का उपासक है, उसी प्रकार समस्त बिहार भी प्रधान रूप से शाक्त ही है । मिथिला तथा बंगाल का सम्बन्ध सूत्र तो प्रायः सभी भाषाविद स्वीकार करते हैं । किन्तु भोजपुरी प्रदेश को मागधी संस्कृति से पृथक मानते हैं किन्तु यह भ्रम है । भोजपुरी भाषा -भाषी प्रदेश यद्यपि बिहार के पश्चिमी छोर पर है तथापि उसकी तथा बंगाल की संस्कृति में अत्यधिक साम्य है । प्रत्येक भोजपुर गाँव में कालीबाड़ी की प्रथा है । इसके अतिरिक्त इधर मुख्य रूप से शिव तथा दुर्गा की पूजा का प्रचलन है । प्रत्येक परिवार की इष्ट देवी का सम्बन्ध भी शक्ति परम्परा से है तथा विवाह आदि अवसरों पर भी शक्ति के ही गीत गाए जाते हैं । शिव शक्ति उपासना के साथ-साथ बिहारी भाषा -भाषी क्षेत्र में विष्णु की पूजा भी प्रचलित है । यह पूजा शालिग्राम, राम तथा हनुमान के रूप में होती है । अयोध्या के निकट होने तथा तुलसीकृत 'रामचरित मानस' के विशेष प्रचार के कारण राम तथा हनुमान की उपासना बिहार तथा विशेषकर भोजपुरी क्षेत्र में प्रचलित है ।

मागधी संस्कृति के फलस्वरूप प्राचीन काल में भोजपुरी क्षेत्र में जयदेवकृत 'गीतगोविन्द' का भी अत्यधिक प्रचार-प्रसार था, किन्तु वर्तमान में तो इसका स्थान 'रामचरित मानस' ने ले लिया है । बंगाल का प्रसिद्ध छंद 'पयार' तो किसी समय समस्त बिहार में प्रचलित था और आज भी

अहिरों के विरहों की कड़ियों में यह छंद सुनाई पड़ता है ।

बिहारी-मैथिली , मगही तथा भोजपुरी एवं बंगला, ओड़िआ तथा असमिया की उत्पत्ति मागधी -प्राकृत तथा अपभ्रंश से हुई है । यह प्राकृत मूलतः उन आर्यों की भाषा थी जिसे हार्नेली तथा ग्रियर्सन ने बाहरी आर्यों के नाम से अभिहित किया है । ग्रियर्सन के अनुसार अत्यन्त प्राचीनकाल में मागधी का प्रसार उत्तरी भारत में भी था, किन्तु कालान्तर में शौरसेनी के प्रभाव के कारण, मागधी दक्षिण तथा पूर्व की ओर फैल गई । शौरसेनी तथा मागधी के बीच अर्द्धमागधी का क्षेत्र है । अर्द्धमागधी में शौरसेनी तथा मागधी दोनों की विशेषताएँ वर्तमान हैं, किन्तु वस्तुतः अर्द्धमागधी पर मागधी का ही प्रभाव अधिक है ।

हिन्दी तथा बिहारी की उत्पत्ति दो पृथक प्राकृतों से हुई है । बिहार की बोलियों का वस्तुतः -बंगला से तथा हिन्दी का राजस्थानी एवं पंजाबी से अति निकट का सम्बन्ध है । व्यावहारिक दृष्टि से आज बिहार में शिक्षा का माध्यम हिन्दी है । साहित्यिक भाषा के रूप में भी बिहार भाषा -भाषी क्षेत्र में आज हिन्दी की ही प्रतिष्ठा है, तथापि बिहारी -मैथिली , मगही एवं भोजपुरी बोलने वालों की अपनी -अपनी बोलियों के प्रति अत्यधिक स्नेह है, और यह आशा करना कि आने वाले समय में बोलचाल के रूप में हिन्दी इसका स्थान ले लेगी, दुराशमात्र है । इन बोलियों के अनेक शब्द आज समर्थ बिहारी लेखकों द्वारा हिन्दी में प्रयुक्त होकर हिन्दी भाषा के शब्द भंडार को सशक्त बना रहे हैं । आज बिहारी भाषा की ये बोलियाँ वस्तुतः हिन्दी की पूरक ही हैं । बिहारी तथा हिन्दी के उच्चारण में निम्न लिखित समानताएँ तथा विषमताएँ हैं -

1. हिन्दी मूर्धन्य । ड़ । तथा । ढ़ । का उच्चारण बिहारी में । र । तथा । रह । हो जाता है जैसे - पड़ता का परल तथा परव ।  
इसी प्रकार हिन्दी का । ल । बिहारी में । र । तथा । न् । में परिणत हो जाता है , जैसे फल का फर, गाली का गारी, लंगौट का नंगोट, लंगोटी का नंगोटी आदि ।
2. हिन्दी के स्वर मध्यम 'ह' का लोप हो जाता है किन्तु बिहारी, भोजपुरी में यह सन्ध्यक्षर के रूप में मौजूद है, जैसे- दिया का दिहलम् ।
3. बिहारी तथा बंगला में विस्मयादि बोधक को छोड़कर शब्द के आदि में 'य' तथा व नहीं आते, किन्तु पश्चिमी हिन्दी की ब्रजभाषा में 'य' तथा व आते हैं । खड़ी बोली में तो 'इ' तथा 'उ' में परिणत हो जाते हैं । जैसे बिहारी भोजपुरी में यमे, ओमे का ब्रजभाषा में यामे, वामे तथा हिन्दी में इसमें, उसमें आदि ।
4. बिहारी तथा बंगला में ह्रस्व एँ, ऐं, औं तथा आँ का प्रयोग होता है, किन्तु हिन्दी में इनका अभाव है जैसे बिहारी में बेंटिया, बोलावत् का हिन्दी में बिटिया, बुलाना आदि ।



5. बिहारी में दो स्वर । अइ । तथा । अ उ । एक साथ आते हैं किन्तु हिन्दी में ये ।  
ते । ऐ । औ । में परिणत हो जाते हैं, जैसे - बिहारी बइसे तथा अउर का हिन्दी में । बैटे ।  
तथा और होगा ।

### शब्द रूप :

1. बिहारी के आकारान्त । घोड़ा । भला । बड़ा आदि शब्द हिन्दी से ही लिए गए हैं ।  
हिन्दी भाषा में भी ये शब्द पंजाबी से आए हैं । बिहारी के वास्तविक शब्द हैं -घोड़  
भल आदि । ब्रज भाषा में इनके ओकारान्त तथा औकारान्त रूप हो जाते हैं,  
जैसे-  
। घोड़ो । घोड़ौ । भलो । भलौ । आदि
2. हिन्दी के 'जो' सर्वनाम का रूप ब्रजभाषा में 'जो' और बिहारी में 'जे' हो जाता है ।
3. बिहारी में व्यक्तिवाचक सर्वनाम के सम्बन्ध कारक के एक वचन के रूप के मध्य में  
'ओ' आता है ; किन्तु खड़ी बोली और ब्रजभाषा में यह 'ए' में परिणत हो जाता है  
जैसे -बिहारी में । मोर ।, हिन्दी में । मेरा, ।, ब्रजभाषा में । मेरी ।
4. हिन्दी में केवल कर्ता तथा तिर्यक के रूप ही मिलते हैं ; किन्तु बिहारी में करण  
तथा अधिकरण के रूप भी मिलते हैं ।
5. बिहारी में कर्ता कारक के संज्ञापदों के साथ 'ने' प्रयुक्त नहीं होता । पूर्वी हिन्दी में  
भी इस अनुसर्ग का अभाव है, किन्तु हिन्दी की सभी बोलियों में यह वर्तमान है, जैसे -  
बिहारी में । कइलसि । ब्रजभाषा में । वाते कियौ । हिन्दी में । उसने किया । आदि ।
6. बिहारी में आकारान्त तिर्यक एकवचन का रूप आकारान्त ही रहता है, किन्तु हिन्दी में  
यह एकारान्त हो जाता है, जैसे - बिहारी - कर्ता - घोड़ा, तिर्यक - घोड़ा, हिन्दी  
तिर्यक घोड़े ।
7. बिहारी तथा हिन्दी अनुसर्गों में पर्याप्त अन्तर है ।
8. बिहारी और हिन्दी के क्रिया रूपों में भी पर्याप्त अन्तर है ।

### क्रिया रूप :

1. बिहारी की कतिपय बोलियों में वर्तमान के रूप, प्राचीन संस्कृत के वर्तमान के रूप में  
'ला' संयुक्त करके सम्पन्न होते हैं । जैसे - देखिला, मैं देखता हूँ । हिन्दी में यह काल

नहीं होता ।

2. हिन्दी में वर्तमान कृदन्तीय के रूपों में ही सहायक क्रिया संयुक्त करके मिश्र अथवा यौगिक वर्तमान की रचना होती है, किन्तु बिहारी की कुछ बोलियों में क्रिया पदों में सहायक क्रिया जोड़कर यह काल सम्पन्न होता है, जैसे - मगही बोली में - हम देखिहि । हिन्दी में । मैं देखता हूँ ।
3. क्रिया रूपों के सम्बन्ध में केवल सम्भाव्य वर्तमान में एक -दो रूपों को छोड़कर बिहारी तथा हिन्दी के क्रिया पदों में किसी प्रकार की समानता नहीं है ।
4. बिहारी में वर्तमान कृदन्तीय के रूप । एत् । तथा । अत् । से सम्पन्न होते हैं । किन्तु खड़ी बोली में ये । ता । प्रत्यय जोड़कर बनाए जाते हैं, जैसे - मैथिली में -देखैत्, भोजपुरी में- देखत्, खड़ी बोली में- देखता ।
5. बिहारी तथा हिन्दी में एक तात्त्विक अन्तर यह भी है कि हिन्दी की सकर्मक क्रियाओं में जहाँ कर्मणि प्रयोग चलता है वहीं बिहारी -मैथिली, मगही तथा भोजपुरी कर्ता में कर्तरि प्रयोग प्रचलित है । मागधी प्रसूत बंगला ओड़िआ आदि भाषाओं में भी कर्तरि प्रयोग प्रचलित है, जैसे - हिन्दी में-मैंने घोड़ा देखा ; भोजपुरी में हम घोड़ा

देखाली; आदि ।

6. बिहारी तथा हिन्दी के कतिपय साधारण शब्द एवं प्रयोग भी एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं । उदाहरण स्वरूप भोजपुरी में अन्य पुरुष, एकवचन वर्तमान की सहायक क्रिया । बाटे । भोजपुरी में । उ बाटे । तथा हिन्दी में । वह है । तथा भूतकाल की क्रिया । रहल । भोजपुरी में । उ रहल । तथा हिन्दी में । वह था । है । किन्तु हिन्दी में यह । है । तथा । था । हैं । भोजपुरी की भाँति बंगला में भी 'बोटे' (वह है) का प्रयोग होता है ।

7. नकारात्मक रूप में बिहारी में । जिन । जनि । मति । शब्द व्यवहार में लाए जाते हैं । किन्तु हिन्दी में केवल । मत । का प्रयोग होता है ।

इसी प्रकार बिहारी में सम्प्रदान के अनुसर्ग रूप में । बदे । खातिर । लागि । लेल । एवं । ले । का व्यवहार होता है किन्तु हिन्दी में इनके स्थान पर केवल । लिए । प्रयुक्त होता है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बिहारी एवं पश्चिमी हिन्दी में तात्त्विक अन्तर है । इन दोनों की उत्पत्ति विभिन्न प्राकृतों से हुई है, तथा उच्चारण, व्याकरण, वाक्य गठन एवं शब्दों के प्रयोग में इनमें पर्याप्त अन्तर है । सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि बिहारी -मैथिली -मगही एवं भोजपुरी का - जिन बातों से पश्चिमी हिन्दी से पार्थक्य है उन्हीं बातों से इसका बंगला से साम्य है । बिहारी बोलियों

की पारस्परिक एकता इस बात को स्पष्ट रूप से प्रमाणित करती है कि इनकी उत्पत्ति मागधी अपभ्रंश से हुई है ।

## पहाड़ी हिन्दी :

नेपाल से शिमला तक के प्रदेश में पहाड़ी भाषाओं का प्रचलन है । यह क्षेत्र हिमालय के दक्षिणवर्ती है । इस उपवर्ग की बोलियों को डॉ. ग्रियर्सन ने मध्य पहाड़ी कहा और जिसके अन्तर्गत गढ़वाली और कुमाऊँनी बोलियाँ आती हैं । पहाड़ी भाषाओं की भाषागत विशेषता के कारण इन्हें तीन भागों में विभाजित किया गया है ।

1. पश्चिमी पहाड़ी,
2. मध्य पहाड़ी ,
3. पूर्वी पहाड़ी

इन पर राजस्थानी भाषा का अच्छा प्रभाव था । मध्य पहाड़ी भाषा जयपुरी बोली से तथा पश्चिमी पहाड़ी मारवाड़ी बोली से अधिक प्रभावित है । इसका मुख्य कारण गूजर जाति एवं राजपूतों का इस प्रदेश में अपना प्रभुत्व स्थापित करना था । मध्य पहाड़ी कुमाऊँनी और गढ़वाली इन दो शाखाओं में विभक्त है । पश्चिमी पहाड़ी बोलियाँ शिमला के निकटवर्ती प्रदेश में बोली जाती हैं । इनमें । चंवाली । जौनसारी । सिरमैरी । बोलियाँ प्रमुख हैं । गढ़वाल और कुमाऊँनी में मूलरूप से अनार्य जातियाँ बसी थीं । बाद में इन पर तिब्बत -चीनी परिवार की भाषाओं का प्रभाव पड़ा । धीरे-धीरे इन भाषाओं पर भारतीय आर्य भाषाओं का प्रभाव बढ़ता रहा । अत्यंत प्राचीन काल से ही इस भूभाग में वैदिक संस्कृति के केन्द्र स्थापित होने लगे । यह स्थान एक तपोभूमि के रूप में परिवर्तित होने लगा । बाद में खस जातियों का आधिपत्य स्थापित हुआ । वर्तमान में भी खसिया लोग अधिक संख्या में हैं और कुमाऊँनी की मुख्य उपबोली खसपराजिया कहलाती है । तीर्थ देश होने के कारण यहाँ अखिल भारतीय भाषाओं का समागम भी बढ़ता गया । मध्यकाल में राजपूत ठाकुरों के व्यापक प्रभाव के फलस्वरूप अनार्य तत्व क्षीण होने लगे, और अब इस वर्ग की उपभाषाएँ हिन्दी में ढल गई हैं । उत्तर प्रदेश के अन्तर्गत होने के कारण इन पर हिन्दी का प्रभाव निरन्तर पड़ता रहा है ।

पहाड़ी हिन्दी की कोई साहित्यिक परम्परा नहीं है । किन्तु वर्तमान में पहाड़ी भाषाओं में आधुनिक साहित्य मिलने लगे हैं । टर्नर की 'नेपाली डिक्सनगरी' भाषा विज्ञान की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं । इन में भाषाओं के बोलने वाले लगभग 28 लाख हैं । इनका अपना लोक साहित्य भी है । भाषा वैज्ञानिकों ने इसी भीली को गुजराती की ही एक शाखा बताया है, जो निकटवर्ती

जंगलों में बोली जाती है ।

इस उपवर्ग की हिन्दी में सानुनासिक स्वरों की अधिकता है । ग्रामीण बोलियों में । य । व । श्रुति सुनाई देती है । शेष ध्वनियाँ राजस्थानी से मिलती जुलती है ।

पुलिंग संज्ञाएँ प्रायः ओकारान्त होती हैं । पुलिंग एकवचन में तिर्यक , आकारान्त और बहुवचन में कुमाऊनी में । न । गढ़वाली में । ऊँ । होता है । स्त्रीलिंग का तिर्यक रूप प्रायः नहीं बदलता । परसर्ग दोनों बोलियों में भिन्न है । क्रिया रूपों में साम्य अधिक है । भूतकालिक रूप ब्रजभाषा की तरह चल्थो, छियो(था) और भविष्यत् काल में । ल । रूप (चलला, हिटला) सामान्य है । वर्तमान काल में भिन्नता है ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर स्पष्ट रूप से यह कहा जा सकता है कि हिन्दी की पाँच उपभाषाएँ है - पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, बिहारी हिन्दी और पहाड़ी हिन्दी ।

हिन्दी व्याकरणगत एवं ध्वनिगत दृष्टि से पंजाबी की संरचना सबसे सरल है । पश्चिमी हिन्दी और पंजाबी की प्रकृति में बहुत अधिक साम्य है । इसके उपरान्त गुजराती का स्थान है जिसे राजस्थानी हिन्दी के माध्यम से अत्यन्त सरलता से समझा जा सकता है । गुजराती का सिन्धी और मराठी से रूपात्मक सम्बन्ध है । मराठी में तीन लिंग हैं, और । श । स । तथा । च । ज । का द्विविध उच्चारण उल्लेखनीय है । बिहारी हिन्दी के माध्यम से असमी, ओड़िआ और बंगला भाषा को आसानी से समझा जा सकता है । पहाड़ी भाषाओं के विकास में राजस्थानी भाषा का विशेष प्रभाव रहा है । नेपाली भाषा का अध्ययन भी राजस्थानी भाषा के माध्यम से ही होना चाहिए ।

साहित्यिक दृष्टि से बंगला में बहुमुखी उच्चकोटि का विपुल साहित्य उपलब्ध है । मराठी का संत साहित्य और आधुनिक कथा साहित्य, पंजाबी के सिख गुरुओं की वाणियाँ और मध्यकालीन साहित्य, ओड़िआ का गतिकाव्य, गुजराती का वैष्णव काव्य एवं समृद्ध उपन्यास साहित्य उल्लेखनीय हैं । साहित्य की विविध विधाओं में हिन्दी में विशाल समृद्ध साहित्य उपलब्ध है और दिन प्रतिदिन इसमें श्रीवृद्धि हो रही है । नेपाली और सिंहली में साहित्य का अभाव है किन्तु वर्तमान समय में थोड़ा बहुत गद्य-पद्य लिखे जा रहे हैं ।

## 2.5 हिन्दी की बोलियाँ :

क्षेत्र की दृष्टि से हिन्दी की विभिन्न बोलियों को विभिन्न समुदायों के रूप में विभक्त करके पाँच वर्गों में सम्बद्ध कर लिया गया है । यह पाँच वर्ग हैं -

|                |               |
|----------------|---------------|
| पूर्वी हिन्दी  | 1. अवधी,      |
| पूर्वी खंड     | 2. बघेली,     |
|                | 3. छत्तीसगढ़ी |
|                | 1. भोजपुरी    |
| बिहारी हिन्दी  | 2. मगही       |
|                | 3. मैथिली     |
| आकारबहुला      | 1. कौरवी      |
|                | 2. हरियाणी    |
| पश्चिमी हिन्दी | 3. दक्खिनी    |
|                | 1. ब्रजभाषा   |
| ओकार बहुला     | 2. बुंदेली    |
|                | 3. कन्नौजी    |
| राजस्थानी      | 1. मारवाड़ी   |
|                | 2. जयपुरी     |
| पश्चिमी खंड    | 3. मेवाती     |
|                | 4. मालवी      |
| पहाड़ी हिन्दी  | 1. कुमाऊनी    |
|                | 2. गढ़वाली    |

## 1. अवधी :

पूर्वी हिन्दी की सबसे महत्वपूर्ण बोली अवधी है। इसके नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि यह केवल अवध की बोली है, किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है, वर्तमान में इसके नाम के अनुसार इसकी सीमा नहीं रही। अब तो इसको व्यवहार में लाने वाले विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए हैं। एक ओर यह हरदोई, खीरी, तथा फैजाबाद के कुछ भाग में बोली जाती तो दूसरी ओर अवध के बाहर फतेहपुर, इलाहाबाद, केराकत तहसील छोड़कर जौनपुर तथा मिर्जापुर के पश्चिम भाग में बोली जाती है।

इसके अन्य नाम पूर्वी तथा कोशली भी हैं । पूर्वी से वास्तव में पूरब की बोली से तात्पर्य है । कभी-कभी अवधी तथा भोजपुरी दोनों को पूर्वी बोलियों के नाम से अभिहित किया जाता है, किन्तु वास्तव में पूर्वी शब्द पूर्वी हिन्दी के लिए ही प्रयुक्त होता है । कोशली से कोशल राज्य की भाषा से तात्पर्य है और यदि इस प्राचीन नाम को स्वीकार कर लिया जाय तो छत्तीसगढ़ी भाषा भी इसके अन्तर्गत आ जाएगी, किन्तु तुलसीकृत रामचरित मानस के कारण अवध शब्द इतना अधिक प्रचलित हो गया कि इस प्रदेश की बोली के लिए अवधी नाम सर्वाधिक उपयुक्त है । डॉ. ग्रियर्सन ने अपने सर्वे के भाग छः पृष्ठ नौ पर अवधी के लिए 'बैसवाड़ी' भी बताया है । किन्तु बैसवाड़ी तो अवधी के अन्तर्गत एक सीमित क्षेत्र की बोली है । वास्तव में वैस राजपूतों की प्रधानता के कारण उन्नाव, लखनऊ, रायबरेली तथा फतेहपुर के कुछ भाग को बैसवाड़ा कहते हैं और बैसवाड़ी इसी क्षेत्र की बोली है ।

अवधी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल का कथन है - "अपभ्रंश या प्राकृत काल की काव्य भाषा के उदाहरणों में आजकल भिन्न-भिन्न बोलियों के मुख्य-मुख्य रूपों के बीज या अंकुर दिखा दिए गए हैं ।" हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग -नामक पुस्तक में डॉ. नामवर सिंह लिखते हैं - "ब्रज भाषा का प्रारंभिक इतिहास शौरसेनी अपभ्रंश से संबद्ध किया जा सकता है, किन्तु अवधी के किसी साहित्यिक का पता नहीं चलता ।" अवध प्रान्त शूरसेन और मगध के बीच में होने से इसे दोनों क्षेत्रों की भाषा सम्बन्धी विशेषताओं से युक्त समझा जाता है । अतः शूरसेन में शौरसेनी अपभ्रंश, मगध से मगधी अपभ्रंश और इन दोनों के मध्य में अर्द्धमगधी अपभ्रंश का प्रचलन रहा होगा । इसी अनुमान पर अर्द्धमगधी के उद्गम का अनुमान किया जाता है ।

डॉ. ग्रियर्सन ने भी अवधी का जन्म अर्द्धमगधी अपभ्रंश से ही माना है । जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' ने भी अवधी को शौरसेनी के अन्तर्गत ही माना है । डॉ. ग्रियर्सन ने 'इवल्यूशन ऑफ अवधी' के पृष्ठ सात पर लिखा है - "अवधी से अर्द्धमगधी भाषागत विशेषताओं के कारण बहुत दूर है, परन्तु पालि से पर्याप्त साम्य और नैकट्य प्रतीत होता है ।"

## अवधी की सामान्य विशेषताएँ :

1. अवधी के पश्चिम में पश्चिमी हिन्दी और पूर्व में भोजपुरी का क्षेत्र है । इस दृष्टि से पश्चिमी हिन्दी में जहाँ आकारान्त शब्द मिलते हैं वहाँ अवधी में आकारान्त के अतिरिक्त अकारान्त या व्यंजनान्त तथा प्रत्ययान्त रूप प्राप्त होते हैं जो बिहारी उपभाषाओं में भी प्रयुक्त होते हैं । उदाहरणार्थ, पश्चिमी हिन्दी में घोड़ा शब्द है, जो अवधी में घोड़ा, । घोड़ । घाड़ । घोड़वा । के रूप में मिलता है । प्रयाग की अवधी में इन

रूपों के अतिरिक्त । घोड़ाना । रूप भी चलता है, जो बिहारी बोलियों में नहीं मिलता ।

2. पश्चिमी हिन्दी में जहाँ लिंग सम्बन्धी नियमों का कड़ाई से पालन होता है, वहाँ अवधी में पर्याप्त शिथिलता पाई जाती है । बिहारी में तो इन लिंग सम्बन्धी नियमों का पालन नहीं के बराबर है ।
3. अवधी में कर्ता एकवचन के शब्द रूपों में 'उकार' का प्रयोग पाया जाता है, जो पश्चिमी हिन्दी में नहीं पाया जाता । जैसे पश्चिमी हिन्दी में । घर । अवधी में । घरू ।
4. अवधी की कुछ बोलियों में । ऐ । लगाकर कर्ता बहुवचन के रूप बनाए जाता हैं ।
5. अवधी के परसर्गों के व्यवहार की अपनी विशेष स्थिति है -
  - अ) पश्चिमी हिन्दी के । ने । परसर्ग का प्रयोग अवधी एवं बिहारी में बिलकुल नहीं किया जाता ।
  - ब) पश्चिमी हिन्दी के । को । कौ । परसर्गों का रूप अवधी में । का । के । तथा बिहारी में । के । हो जाता है ।
  - स) अधिकरण कारक में पश्चिमी हिन्दी में बिहारी की भाँति ही । में । परसर्ग प्रयुक्त होता है, परन्तु अवधी में इसका रूप । मा । माँ । हो जाता है ।
6. ऐसे ही सर्वनाम शब्दों के प्रयोग में अवधी अपनी विशेषता रखती है -
  - अ) पश्चिमी हिन्दी में व्यवहार होने वाले सम्बन्ध कारक के सर्वनाम । मेरा । तेरा । मेरो । तेरो । अवधी में । मोर । तोर । के रूप प्रयुक्त होते हैं । ऐसे ही बहुवचन विकारी रूप पश्चिमी हिन्दी । हमारे । का अवधी में । हमरे । रूप हो जाता है ।
  - ख) सम्बन्ध वाचक सर्वनाम । जो । पश्चिमी हिन्दी की तरह ही अवधी में भी । जो । ही रहता है । किन्तु प्रश्नवाचक सर्वनाम का रूप पश्चिमी हिन्दी में कौन । होता है और अवधी में वह । कोन । हो जाता है । बिहारी उपभाषाओं में । जो । का । जे, और । कौन । का । के । रूप मिलता है ।
7. क्रिया रूप में भी अवधी की अलग विशेषताएँ हैं -
  - अ) पश्चिमी हिन्दी में वर्तमान कालिक सहायक क्रिया । है । प्रयुक्त होती है । किन्तु अवधी में । अहै । बाहे । बाहै । बाही । बाहू । आदि का प्रयोग किया जाता है । बिहारी में । बा । बाड़े । बाड़ै । आछ । आछै । आदि रूप चलते हैं ।

- ब) अवधी में भूतकाल अपूर्ण या 'घटमान' में सामान्यतः किसी प्रत्यय का प्रयोग नहीं किया जाता, किन्तु पश्चिमी अवधी में । इ । प्रत्यय मिलता है; परंतु पश्चिमी हिन्दी में इस स्थिति में । आ । या । उ । प्रत्यय का प्रयोग होता है । जैसे - । जाना । जातु । आदि ।
- स) ठीक इसके विपरीत पश्चिमी हिन्दी में भूतकाल में किसी प्रत्यय का प्रयोग नहीं होता । किन्तु अवधी में । इस । या । इसी । प्रत्यय का व्यवहार होता है । जैसे - दिहिस । दिहिसि ।
- द) पश्चिमी हिन्दी में भविष्यत् काल में केवल - । ह । रूप का ही व्यवहार होता है ; किन्तु अवधी में - । ह । के साथ -साथ बिहारी हिन्दी का । व । भी प्रयुक्त किया जाता है ।

आचार्य श्यामसुन्दर दास ने अवधी के अन्तर्गत आने वाले विभाषाओं के सम्बन्ध में लिखा है - “अवधी के अन्तर्गत तीन प्रमुख बोलियाँ हैं - अवधी बोली, बघेली बोली और छत्तीसगढ़ी । अवधी और बघेली में कोई अन्तर नहीं है । बघेलखंड में बोले जाने के कारण इसका नाम बघेली पड़ गया । छत्तीसगढ़ी पर मराठी और ओड़िआ का प्रभाव पड़ा है । इसलिए वह अवधी से कुछ बातों में भिन्न हो गई है । डॉ. बाबूराम सक्सेना अवधी की क्षेत्रगत तीन विभाषाएँ मानते हैं -पश्चिमी, केन्द्रीय तथा पूर्वी । खीरी, सीतापुर लखनऊ, उन्नाव तथा फतेहपुर की अवधी पश्चिमी भाग के अन्तर्गत बहराइच, बाराबंकी, तथा रायबरेली की अवधी केन्द्रिय भाग के अन्तर्गत तथा गोंडा, फैजाबाद, सुल्तानपुर, इलाहाबाद तथा जौनपुर एवं मिर्जापुर की अवधी पूर्वी के अन्तर्गत बताई गई है ।

## बघेली :

बघेली वस्तुतः बघेलखंड की बोली है । इसका नामकरण बघेले राजपूतों के नाम पर हुआ है । जिसकी इधर प्रधानता है । रीवां बघेल खण्ड का मुख्य स्थान है । इसलिए इसे रीवाई भी कहते हैं । बघेली छोटा नागपुर के चन्दभकार तथा रीवा के दक्षिण, मंडला जिले में भी बोली जाती है । यह मिर्जापुर तथा जबलपुर के कुछ भाग में भी बोली जाती है । इसी प्रकार फतेहपुर, बाँदा, तथा हमीरपुर भी इसी के अन्तर्गत है, किन्तु इधर की बघेली में आसपास की बोलियों का सम्मिश्रण हो जाता है । मंडला के दक्षिण -पश्चिम की बघेली भी वस्तुतः मिश्रित ही है । राजनीतिक दृष्टि से बाँदा जिला बुन्देल खंड के अन्तर्गत है, इसके परिणाम स्वरूप कुछ लोग बाँदा की बोली बुन्देली ही मानते हैं । उल्लेखनीय है कि बाँदा की बोली तथा बघेली के सादृश्य को प्रायः सभी स्वीकार करते



हैं, किन्तु वास्तव में बुन्देली तथा बघेली दोनों पृथक बोलियाँ हैं। यद्यपि बाँदा जिला बुन्देलखंड के अन्तर्गत है किन्तु यहाँ की बोली बघेली है।

बघेल की दो प्रकार की बोलियाँ देखने को आती हैं -

1. शुद्ध बघेली - समस्त बघेलखंड में बोली जाने वाली।
2. मिश्रित बोली - समीपस्थ बोलियों से मिलकर सीमान्त क्षेत्रों में बोली जाने वाली।

बघेली के उत्तर में दक्षिण-पश्चिमी इलाहाबाद की अवधी तथा मध्य मिर्जापुर की पश्चिमी - भोजपुरी बोली जाती है। इसके पूरब में छोटा नागपुर तथा बिलासपुर की छत्तीसगढ़ी का क्षेत्र है। इसके दक्षिण में बालाघाट की मराठी तथा दक्षिण पश्चिम में बुन्देलखंडी का क्षेत्र है। बघेली भाषा बोलने वालों की संख्या 40 लाख के ऊपर है।

बघेली की मिश्रित बोलियाँ पश्चिम तथा दक्षिण में बोली जाती है। पश्चिम में मिश्रित बघेली फतेहपुर, बाँदा तथा हमीरपुर में बोली जाती है। इधर की भाषा में यद्यपि बघेली की ही प्रधानता है तथापि उसमें बुन्देली का भी सम्मिश्रण हुआ है। पश्चिम की ओर आगे बढ़ने पर जालौन जिले में निट्टा बोली, बोली जाती है। यह भी एक मिश्रित बोली है किन्तु इसमें भी बुन्देली की ही प्रधानता है। मिश्रित बोली बोलने वालों की संख्या लगभग नौ लाख है।

दक्षिण की मिश्रित बोली को मंडला जिले की विभिन्न जातियाँ बोलती हैं। इसमें बघेली का मराठी तथा बुन्देली से सम्मिश्रण हुआ है। पश्चिम की मिश्रित बोलियों से इससे यह अन्तर है कि यह किसी क्षेत्र विशेष में नहीं बोली जाती, अपितु इसे विभिन्न जातियों के लोग ही बोलते हैं। इसके बोलने वालों की संख्या लगभग एक लाख है। बघेली साहित्य की दृष्टि से नगण्य उपभाषा है। इसमें ललित साहित्य का अभाव है। मध्यकाल में उच्चकोटी के कलाकारों -संगीत सम्राट तानसेन बीरबल, नरहरि, आदि का सम्बन्ध रीवा राज्य से रहा है। रीवा नरेश गुणग्राहक होने के साथ-साथ स्वयं भी उच्चकोटी के कलाकार थे। बघेली में साहित्य न मिलने का प्रमुख कारण इन सबका अवधी भाषा को अपनाना है।

### **बघेली की ध्वन्यात्मक विशेषताएँ अवधी से उनका साम्य -वैषम्य :**

1. अवधी में ।व।का।ब। उच्चारण अवश्य होता है, परंतु ।व। ध्वनि की सुरक्षा भी अनेक स्थानों पर दिखाई देती है। बघेली में उक्त ध्वनि की सुरक्षा का अभाव है, जैसे - पावा - पाबा - आवा -आबा।
2. बघेली में ।उ।ओ।इ।ए।स्वरों को ।घा।वा।आदेश हो जाता है, जैसे - खेत -ख्यात ।, जेहि-ज्यहि ।, घोड़ा -घ्वाड़ । तुमरे -त्वारे । आदि।

3. उपर्युक्त दोनों अपवादों को छोड़कर शेष ध्वनि सम्बन्धी अधिकांश बातें अवधी की तरह ही संपन्न होते हैं ।
4. डॉ. बाबूराम सक्सेना के अनुसार बघेली में विशेष पदों के दीर्घांत रूप में - 'हा' लगता है, परंतु अवधी में ऐसा नहीं होता ।
5. आदरार्थक आज्ञा का रूप । देई । (भोजपुरी देई) अवधी में नहीं मिलता, परंतु बघेली में वह प्राप्त होता है ।

### **बघेली की व्याकरणात्मक विशेषताएँ तथा अवधी से उसका साम्य :**

- 1, बघेली में संज्ञा के रूप अवधी के समान हैं - जैसे -(मूल) =घ्वाउ, घ्वाई (तिर्यक) घ्वाड़, घ्वाड़न ।
2. इसमें सर्वनामों के एकवचन में । मय । म्वई । म्वाह ।, बहुवचन में । हम । हम्हारे । हम्हार । रूप मिलते हैं ।
3. इसमें कर्त्ता के । ने । परसर्ग का अभाव है । का । कहा । से । तर । कर । आदि कारक चिन्हों का प्रयोग होता है ।
4. बघेली में सहायक क्रिया वर्तमान काल में एकवचन । है । हूँ । बहुवचन में । अहेन । भूतकाल में एकवचन । रह । रहेऊँ । बहुवचन । रहेन । भविष्यत् काल में एकवचन । होइ । होग्येऊँ । बहुवचन । होई । है । होव । रूप होते हैं । इसके अतिरिक्त भूतकाल के क्रिया रूपों में एकवचन में रहा और बहुवचन में तात प्रत्यय लगता है ।
5. परसर्गों में कर्म-सम्प्रदान । के । । का । क । के अतिरिक्त । कहा । और करण - अपादान में । ते । के अतिरिक्त । तार । उल्लेखनीय है ।
6. शब्दावली में आदिवासियों की भाषाओं के तत्व भी पाए जाते हैं । जैसे - एक मनई के दुइ लरिका रहै । .... तब वोकर जेठ लरिका खेत मा रहा है । .... मैं उठि कै अपने बाप के लधे जात हौ औ बो से कहिहौ ..... ।

## छत्तीसगढ़ी, लरिया या खल्टाही :

छत्तीसगढ़ी के लिए उपर्युक्त दो नाम भी प्रयुक्त होते हैं । यह वस्तुतः छत्तीसगढ़ की भाषा है । विलासपुर जिले का एक अंश भी इसी के अन्तर्गत आता है । पड़ोस के बालाघाट जिले में इसे खलोटी कहते हैं । छत्तीसगढ़ी बालाघाट के भी कुछ भागों में बोली जाती है । और वहाँ पर 'खल्टाही' या खलोटी' की भाषा कहलाती है । छत्तीसगढ़ के मैदान के पूरब में पूर्वी सम्बलपुर ओड़िशा प्रदेश का है । यहाँ के लोग अपने पश्चिम में स्थित छत्तीसगढ़ प्रदेश को 'लरिया' नाम से पुकारते हैं और इस प्रकार इधर छत्तीसगढ़ी का नाम 'लरिया' पड़ जाता है ।

कहा जाता है कि मध्यदेश पूर्वोत्तर में पलामू(बिहार) की सीमा से लेकर दक्षिण में बस्तर तक और पश्चिम में बघेलखंड को छूता हुआ पूर्व में ओड़िशा की सीमा तक फैला हुआ जो क्षेत्र है, उसमें छत्तीसगढ़ -रायगढ़, सारंगढ़, खैरागढ़ आदि छत्तीस गढ़ बने थे । और इन्हीं 36गढ़ों के कारण इस भूखंड को छत्तीसगढ़ और बोली को छत्तीसगढ़ी कहा जाता है । इतिहास में इस क्षेत्र को दक्षिण कोसल, दण्डकारण्य और गौंडवाना कहा जाता रहा है । चेदि राजाओं के नाम पर इसका नाम चेदीरायगढ़ था । चेदीशगढ़ से लोक में छत्तीसगढ़ बन गया ।

छत्तीसगढ़ी के अन्तर्गत छत्तीसगढ़ के रायपुर तथा विलासपुर आते हैं । यहाँ तथा सम्बलपुर जिले के पश्चिमी भाग में विशुद्ध छत्तीसगढ़ी बोली जाती है । इधर रायपुर के दक्षिण-पश्चिम भाग में ओड़िआ की एक विभाषा प्रचलित है । काँकर नांदगाँव तथा कर्वघा एवं बाँदा जिले के उत्तर पूर्व में तथा बालाघाट के पूर्व में भी शुद्ध छत्तीसगढ़ी बोली जाती है । विलासपुर के पूर्व में शक्ति, रायगढ़ एवं सारंगगढ़ में भी छत्तीसगढ़ी बोली जाती है । इसके उत्तर पूर्व में कोरिया, सरगुजा, उदयपुर तथा जशपुर राज्य हैं । इनमें से प्रथम तीन में तो छत्तीसगढ़ी की ही एक विभाषा सरगुजिया प्रचलित है । जशपुर के पश्चिमी भाग में भी वस्तुतः वही विभाषा प्रचलित है । विशुद्ध छत्तीसगढ़ी बोलने वालों की संख्या 60 लाख के आसपास है ।

छत्तीसगढ़ी वस्तुतः पड़ोस के प्रदेश ओड़िशा के सीमावर्ती क्षेत्र एवं बस्तर में भी बाली जाती है । बस्तर की भाषा वस्तुतः हलवी है । डॉ. ग्रियर्सन के अनुसार हलवी मराठी की ही एक उपभाषा है । किन्तु डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी डॉ. ग्रियर्सन के इस मत से सहमत नहीं हैं । हलवी में यद्यपि मराठी अनुसर्गों का प्रयोग होता है तथापि डॉ. चटर्जी के अनुसार यह मागधी की ही एक उपभाषा है । इन क्षेत्रों में कई लाख आदिवासी रहते हैं । उनकी बोलियों के अलावा मराठी, तेलगू और ओड़िआ का प्रभाव छत्तीसगढ़ी में देखा जा सकता है ।

साहित्य की दृष्टि से छत्तीसगढ़ी में भी बघेली की ही भाँति पुराना साहित्य बिलकुल नहीं मिलता । छत्तीसगढ़ी में आजकल कुछ छोटी-छोटी बाजारु पुस्तकें अवश्य प्रकाशित हुई हैं, किन्तु वे साहित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं हैं । वास्तव में बघेली और छत्तीसगढ़ी के क्षेत्र में भी

साहित्यिक भाषा के रूप में पहले अवधी का ही प्रचार था और आजकल इस समस्त क्षेत्र की साहित्यिक भाषा खड़ी बोली ही है । वर्तमान में छत्तीसगढ़ नया प्रदेश गठन होने के बाद से इसमें व्यापक साहित्य का निर्माण हो रहा है । लोक गीतों की दृष्टि से यह भाषा अत्यंत सम्पन्न है ।

### **छत्तीसगढ़ी की ध्वन्यात्मक विशेषताएँ :**

1. छत्तीसगढ़ी में संज्ञा, सर्वनाम में । ऐ । औ । ध्वनियों का क्रमशः अइ और अउ रूप मिलता है, जैसे - । बैल - बइल । । जौन - जउन ।
2. इसमें शब्द के मध्य की । ड़ । ध्वनि का लोप होता है य। जैसे - लड़का - लइका ।
3. इसमें अल्पप्राण ध्वनियों के महाप्राण ध्वनियों में परिवर्तन की प्रवृत्ति है -  
जैसे - । जन - झन । कचहरी - कछेरी । जिन - झिन । जात है - जाथै । जाए हउँ - जाथऊँ । आदि ।
4. इसमें । स । के स्थान पर । छ । मिलता है । जैसे - सीता - छीता । सात - छात । आदि ।

### **5. व्याकरणात्मक विशेषताएँ :**

1. संज्ञा के एकवचन से बहुवचन बनाने के लिए प्राचीन रूपों में । अन । प्रत्यय तथा नवीन रूपों में । मन । प्रत्यय का प्रयोग होता है, जैसे - लड़िकाअन । लड़िकामन ।
2. परसर्गों का प्रयोग निम्न प्रकार से होता है -

|                |   |            |
|----------------|---|------------|
| कर्ता          | - | शून्य      |
| कर्म, संप्रदान | - | का. ला, वर |
| करण अपादान     | - | ने, से     |
| सम्बन्ध        | - | के         |
| अधिकरण         | - | मैं, माँ   |

संज्ञा, सर्वनामों में कर्म -सम्प्रदान में । ला । और करण -अपादान में । ले । छत्तीसगढ़ी के विशिष्ट परसर्ग हैं । सम्बन्ध कारकीय । के । लिंग के अनुसार परिवर्तित नहीं होता । कर्ता के साथ । हर । का प्रयोग उसे एक निश्चित अर्थ प्रदान करता है ।
3. उत्तम पुरुष सर्वनाम एकवचन में । मैं । तिर्यक -मोर ।, तथा बहुवचन में । मैं । हम । हम्मन । आदि रूप मिलते हैं ।

4. क्रियाओं में वर्तमानकालिक । हूँ । का उत्तम पुरुष एकवचन - । हवउ ।, मध्यम पुरुष एकवचन । हव । अन्य पुरुष एकवचन । हवै ।, बहुवचन - हवन ।, हवै । आदि रूप तथा भूतकाल एकवचन में - । रहैउ । रहयौ । रहे । और बहुवचन में । रहेन । रहेउ । आदि रूप प्रयुक्त होते हैं ।
5. साधारणतः । मन । या । मन्नना । जोड़कर बहुवचन बनाया जाता है, जैसे - दूरामन । (लड़के), । हम मन । (हम लोग) आदि ।
6. विशेषण और क्रियाओं के रूप बहुत कुछ अवधी से मिलते जुलते हैं । संज्ञार्थक क्रिया । देखब । करव । भी होती है, और । देखन । करन भी होती है ।
7. शिष्ट और अशिष्ट प्रयोगों में थोड़ा अन्तर है । अशिष्ट रूपों में । व -श्रुति । रहती है जैसे - । हवौ(मैं हूँ) ।, हवन(हम) हैं । आदि ।

उदाहरण - एकठन मनखे के दुई बेटवा रहित । तवो वोकर बड़का बेटवा खेत माँ रहिस ।  
- मैं उठ के अपना ददा मेर जात और वो ला गोठियाहौं ।

छत्तीसगढ़ी की प्रधान उपबोलियाँ दस हैं - सरगुजिया, सदरी, कोरवा, बैगानी, विझवाली, कलंगा, भुलिया, सतनामी, कांकरी, विलासपुरी अथवा हलवी ।

अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी भाषा के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पूर्वी हिन्दी का क्षेत्र पश्चिमी हिन्दी और बिहारी का मध्यवर्ती है । विद्वानों का वर्ग बघेली को अवधी का ही एक रूप मानते हैं । पूर्वी हिन्दी की विभाषाओं में अवधी ही साहित्य सम्पन्न भाषा है ।

## बिहारी हिन्दी :

बिहार राज्य की कोई एक भाषा नहीं है । वरन् डॉ. ग्रियर्सन के अनुसार मगही, मैथिली और भोजपुरी उपभाषाओं के समन्वय रूप को ही बिहारी भाषा कहते हैं । बिहारी के स्वतंत्र भाषा होने के कुछ मुख्य कारण हैं । ( जिसका वर्णन पहले किया गया है) अन्यथा इसे मागधी में ही सम्मिलित हो जाना चाहिए था । बिहारी भाषा में पूर्वी हिन्दी और बंगला भाषाओं से भिन्न कुछ विशेषताएँ हैं, ये विशेषताएँ बिहारी की बोलियों में देखने को मिलती हैं । चूंकि इस प्रदेश में बौद्ध बिहारों का बाहुल्य रहा है । जैनों की भाषा जो अर्द्धमागधी से विकसित हुई थी, बिहारी ही रही होगी, जिसका प्रचलन बौद्ध बिहारों में होता रहा होगा । इसकी एक बोली मैथिली का साहित्य बहुत प्राचीन है । अपनी विशिष्टताओं के कारण मैथिली कोकिल विद्यापति का काव्य बिहारी भाषा की निधि है । परंतु बिहार का सम्बन्ध बंगाल की अपेक्षा उत्तरप्रदेश से अधिक रहा है । अतः बिहारी भाषा पूर्वी हिन्दी के अधिक निकट है । आज नागरी हिन्दी समस्त बिहार की शिक्षा का माध्यम बनी हुई है ।

बिहारी भाषा के उत्तर में तिब्बत -वर्मी परिवार की भाषाएँ बोली जाती हैं, पूर्व में बंगला का प्रदेश है। दक्षिण में ओड़िआ तथा पश्चिम में पूर्वी हिन्दी की अवधी, बघेली आदि बोलियों का प्रचलन है। बिहारी की बोलियाँ गोरखपुर में और बनारस के प्रदेशों में बोली जाती हैं। छोटा नागपुर के पठारी भाग की बोली भी यही है - बिहारी उपभाषा वर्ग के अन्तर्गत आने वाली तीन बोलियों का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार से है।

## भोजपुरी :

इसका प्रचार काफी जनपद में रहा है। राजाभोज के वंशजों ने मल्ल जनपद में आकर नया राज्य स्थापित किया और अपनी राजधानी का नाम भोजपुर रखा। उसी नगर के नाम पर प्रदेश का नाम भोजपुर पड़ गया और उसकी बोली भोजपुरी कहलाई। यद्यपि उस नगर का वैभव नष्ट हो गया फिर भी इस नाम के दो गाँव बड़का भोजपुर और छोटका भोजपुर शाहाबाद जिले के अन्तर्गत आते हैं जो उसकी स्मृति को सुरक्षित रखे हुए हैं। इस क्षेत्र के अन्तर्गत उत्तरप्रदेश में बनारस, गाजियाबाद, बलिया, गोरखपुर, देवरिया, आजमगढ़ का पूरा क्षेत्र और मिर्जापुर, जौनपुर तथा बस्ती के कुछ भाग एवं बिहार के शाहाबाद और सारन (छपरा) का पूरा जिला और चम्पारन, रांची तथा पलामु के कुछ सम्मिलित हैं। भोजपुरी हिन्दी प्रदेश की सबसे बड़ी बोली है। इसके बोलने वालों की संख्या लगभग दो करोड़ पचहत्तर लाख है। भोजपुरी के प्राचीन कवियों में संत कबीरदास, धरमदास, धरणीदास तथा शिवनारायण के नाम उल्लेखनीय हैं। आधुनिक काल में कुछ छोटे-छोटे नाटक, कुछ कहानी संग्रह और कविता संग्रह प्रकाशित हुए हैं। भोजपुरी भाषा सिनेमा-चित्रपट का माध्यम भी बनी है। लोककवियों में ठाकुर और भिखारी प्रसिद्ध हैं। ठाकुर का 'विदेसिया' अत्यन्त लोकप्रिय गीतिनाट्य है। चूँकि यह केंद्र प्राचीन काल से ही संस्कृत का केन्द्र रहा है, साथ ही हिन्दी का भी, अतः इस बोली में साहित्य सृजन का अभाव रहा। मातृभाषा के रूप में भोजपुरी बोलने वाले काव्य-चर्चा करते समय ब्रजभाषा और खड़ी बोली का ही सहारा लेते हैं। इसकी तीन बोलियों में 'नागपुरिया' का नाम उल्लेखनीय है। ध्वन्यात्मक विशेषताएँ -

1. भोजपुरी के मध्य 'र' का लोप हो जाता है, जैसे - लइका। (अवधी लरिका)। धई(अवधी धरि)। कइ (अवधी में करि)
2. इसमें 'न्' के स्थान पर क्रमशः 'न'। 'न्ह'। हो जाता है। जैसे - सुन्नर(सुन्दर), चान (चान्द), बूनि(बून्दि), बान्ह(बान्ध) कान्ह(कान्धा) आदि
3. इसमें 'म्ब'। 'म्भ'। के स्थान पर क्रमशः 'म'। 'म्ह'। होता है। जैसे - तामा। (ताम्बा), लाम(लाम्बा), सम्हार(सम्भाल), खम्हा(सम्भा)।

4. संगीतात्मक स्वराघात भोजपुरी की विशेषता है ।

### व्याकरणात्मक विशेषताएँ :

1. भोजपुरी की स्त्रीलिंग संज्ञाएँ प्रायः इकरान्त या ईकारान्त होती हैं, जैसे । नातिन - नातिनि । बहिन - बहिनि । भूख-भूखि । आग - आगि । इनके अलावा अंगुठी, हरदी, छेरी (बकरी) आदि रूप तो हैं ही ।
2. बहुवचन में संज्ञा अपरिवर्तित रहती है । अधिक स्पष्टता के लिए ।लोग । या । लोगन । शब्द जोड़ दिया जाता है ।
3. ब्रजभाषा और अवधी की तरह तिर्यक रूप । न । होता है ।
4. हम, तुम का बहुवचन । हमनी । हमनीका । तुहनीका । होता है ।
5. परसर्ग अवधी से मिलते हैं । कर्म -सम्प्रदान में अतिरिक्त परसर्ग । ला । ग । के । के खातिर । करण में । ले । ते । और अधिकरण में खड़ी बोली की तरह मिलता है ।
6. क्रियापदों में ।ल । की प्रधानता मागधी के प्रभाव के कारण है । 'ल' वर्तमान, भूत और संज्ञार्थ क्रिया में प्रयुक्त होता है, जैसे खाया - खाइल । खाता- खाला ।
7. आदरसूचक और हीनतासूचक क्रियारूपों में भी भेद पाया जाता है । क्रिया रूप निम्न प्रकार बनते हैं -

वर्तमान - हम चली, तोहनी का चलउ, रउआँ चली, उ चलसु, उहाँ का चली ।

भविष्यत् - हम देखवी तोहनी (का) देखब (सन) रउआँ देखबि, उ चलिहें, उहाँ का देखबि ।

भूत - हम देखलीं, तोहनी (का) देखल, रहआँ देखली, उ देखलसि, उन्हनि का देखलेसन ।

क्रियार्थक संज्ञा - देखल ।

वर्तमान कालिक कृदन्त - देखत, देखित ।

भूत कालिक कृन्दत - देख-ल, देखलस ।

### मगही :

यह बोली गंगा के दक्षिण में, शाहाबाद जिले को छोड़कर पूरे दक्षिण बिहार में बोली जाती है । मगही मागधी और मगध की भाषा का आधुनिक नाम है, इसके क्षेत्र में पटना, गया और

हजारीबाग के सभी जिले तथा पलामु का पश्चिमी भाग एवं मुंगेर और भागलपुर का थोड़ा-थोड़ा भाग सम्मिलित है। मगही में ललित साहित्य का अभाव है किन्तु कुछ साहित्य सृजन भी इसमें हुआ है। 'मगही' शब्द भाषा वैज्ञानिक विकास की सूचना देता है। इसका जन्म मागधी से हुआ है। इसके लोकगीतों और लोककथाओं की काफी चर्चा रही है। प्रदेश में इसका उपयोग कैथि लिपि में होता है। इसके बोलने वालों की संख्या लगभग 66 लाख है। मगही बोली के संत कवियों में बाबा मोहन दास और बाबा हेमनाथ प्रसिद्ध हैं। और आधुनिक युग में जयनाथपति प्रसिद्ध रहे हैं।

मगही और भोजपुरी में बहुत कम अन्तर है। लिंग -वचन के रूपों में कुछ भी अन्तर नहीं है। संज्ञा और सर्वनाम के परसर्ग जो भोजपुरी में हैं, उनके अतिरिक्त सम्प्रदान में। ला। लेल। और अधिकारण में। माँ। भी प्रयुक्त होते हैं। सर्वनामों में। रोआँ। (आप) का प्रयोग केवल पश्चिम में होता है, पूर्व में। आप। मिलता है। क्रिया के रूप भोजपुरी से मिलते-जुलते हैं। अन्तर यह है कि एक तो सहायक क्रिया हिन्दी की तरह है, भले ही उसका रूपान्तर भोजपुरी। बाटे। और। भइल। के समान होता है, और दूसरे इन रूपों में। क। थ। ख। विकल्प रूप से जोड़े जाते हैं। जैसे -। ही। हकी। (मैं हूँ), हलहिन। हलखिन। हलथिन। (वे थे)। अन्य पुरुष में ऐसे योग सामान्य रूप से पाये जाते हैं। इन बातों में यह मैथिली के निकट है।

मगही एक बहुत छोटा प्रदेश है। पटना इसकी राजधानी है। पटना और गया मुख्य रास्ते पर हैं और मगही -भाषियों से सम्पर्क बहुत विस्तृत है। इस कारण इस बोली में सरलीकरण की प्रवृत्ति अधिक है और सामान्य हिन्दी के रूपों को ग्रहण करके मगही के शब्द भंडार में लगातार वृद्धि हो रही है।

## मैथिली :

जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है यह मिथिला प्रदेश की बोली है। मिथिला प्रदेश भोजपुरी क्षेत्र के पूर्व में तथा मगध के उत्तर में स्थित है। इस प्रदेश का ऐतिहासिक महत्व रहा है। यह बिहार प्रान्त के गंगा के उत्तरी भाग में प्रचलित है। 'मैथिला' शब्द का सम्बन्ध मिथ(युग्म) से है, अर्थात् यह वैशाली, विदेह तथा अंग जनपदों का संयुक्त प्रांत है। पुराणों में मिथिला नाम के एक तेजस्वी ऋषि का वर्णन मिलता है। ऐसा भी माना जाता है कि मिथि नाम के एक राजा हुए हैं। जिन्होंने कई अश्वमेध यज्ञ इस भूमि में किए हैं। विशुद्ध मैथिली दरभंगा, मुजफ्फरपुर, पूर्णिया, उत्तरी मुंगेर, और उत्तरी भागलपुर के जिलों में बोली जाती है। मिश्रित रूप में यह नेपाल की तराई, चम्पारन और संथाल परगना के संलग्न भागों की बोली है। दरभंगा राज्य ने इस बोली के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया है। मैथिली बोलने वालों की संख्या एक करोड़ तेरह लाख के लगभग है। मैथिली साहित्य के



प्राचीनकाल के गीतकारों में विद्यापति और गोविन्ददास, मध्यकाल के नाटककारों में रणजीतलाल और जगतप्रकाश मल्ल, कीर्तनिया नाटक लिखने वालों में उमापति उपाध्याय एकांकीकारों में शंकरदेव, संतकवियों में साहेबरामदास, कृष्णभक्त कवियों में मनवोध झा और आधुनिककाल के साहित्यकारों में चंदा झा, तंत्रनाथ झा और हरमोहन झा प्रसिद्ध हैं। मैथिली लोकगीतों की परम्परा के लिए प्रसिद्ध है। शृंगारी भावों की मधुर गुदगदी उत्पन्न करने वाले मैथिली कोकिल विद्यापति के रसयुक्त पद इसी भाषा में हैं, जिनको पढ़ कर चैतन्य महाप्रभु मंत्रमुग्ध हो जाया करते थे। कुछ समय तक यह भाषा साम्प्रदायिकता के झंझट में फँसी रही लेकिन आज इसका स्वतंत्र अस्तित्व है। इसकी प्रादेशिक लिपि बंगला से मिलती जुलती है।

### **ध्वन्यात्मक विशेषता :**

1. मैथिली का । अ । थोड़ा संवृत होता है । बलाघातहीन । अ । इ । उ । अति ह्रस्व होते हैं ।
2. । ह । ऐ । ओ । औ । के ह्रस्व और दीर्घ दो -दो उच्चारण होते हैं ।
3. सभी शब्द स्वरांत होते हैं । किन्तु अब कुछ -कुछ प्रवृत्ति हिन्दी की तरह ।अ। का लोप करके हलन्त उच्चारण करने की ओर है ।
4. प्रायः उच्चारण सम्बन्धी विशेषताएँ अवधी और भोजपुरी के समान है । किन्तु मैथिली में एक तो मध्यग । श । ष । स । के स्थान पर संयुक्त अक्षर में भी ।ह । हो जाता है । जैसे - पुष्प -पुहुप । मास्टर -माहटर । तथा । ह । का उच्चारण । झ । करके होता है , जैसे - ग्राह्य - ग्राज्जिय ।

### **व्याकरणात्मक विशेषताएँ :**

1. संज्ञा के घोरा, घोर वा, घोरउआ अथवा माली, मालिया, मालीया अवधी के समान हैं ।
2. बहुवचन । सम । सबहिं । लोकबि जोड़ने से बनता है ।
3. परसर्ग से पहले का अकारान्त शब्दों का तिर्यक रूप आकारान्त हो जाता है ।  
जैसे - पहरा सौ । - शेष संज्ञाएँ अपरिवर्तित रहती हैं ।
4. मैथिली में परसर्ग निम्न प्रकार से होता है -कारण कारक एँ, जैसे-  
नेतिँ (लड़की के द्वारा)

कर्म सम्प्रदान -कें  
करण -अपादान - सै, सौ  
सम्बन्ध - क, कर, केर  
अधिकरण - में, मैं ।

5. स्त्रीलिंग संज्ञा के अंत में प्रायः । ई । अथवा । इया । रहता है ।
6. सर्वनामों के एकवचन तिर्यक रूप मोहि, तोहि, ऐहि, ओहि, जाहि, काहि होता है ।  
। की । (क्या) का तिर्यक । कथी । केयो । (कोई) का । ककरहू । और । किछु ।  
का 'कछु' होता है ।
7. संबंध के । क । कर । र । के साथ । आ । जोड़कर भी तिर्यक रूप बनाए जाते हैं,  
जैसे - मोरा, लकरा, हुनका आदि ।
8. क्रिया रूप बड़े जटिल हैं । कर्ता और कर्म के प्रति आदरसूचकता के अनुसार क्रिया  
रूप बदल जाते हैं, जैसे - देखलय-उन्होंने उसको देखा ।  
देखलथिन्हि -उन्होंने उनको देखा । आदि ।
9. । ए । औ । के अन्त में होने वाले क्रिया रूपों के साथ । का । जोड़ा जा सकता है,  
जैसे - सुतलिएक (मै सोया), देखल कैक - उसने देखा ।
10. सहायक क्रियाओं में । छ । अछ् । या । थिक । दो धातुओं का अधिक  
प्रयोग होता है ।  
भूतकाल । ल । रूप और भविष्यत् काल । व । रूप जोड़कर प्रयोग होते हैं ।

## पश्चिमी हिन्दी :

हिन्दी भाषा के क्षेत्र पर दृष्टिपात करने पर यह ज्ञात होता है कि हरियानी( पूर्वी पंजाब) हिमाचलप्रदेश, दिल्ली, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा बिहार इन सात राज्यों के सम्मिलित भूभाग को ही हिन्दी प्रदेश या हिन्दी भाषा का क्षेत्र कहा जाता है । दूसरे शब्दों में भाषाशास्त्र की दृष्टि से मध्यदेश की उपभाषाओं और बोलियों के समष्टिगत रूप को हिन्दी कहते हैं और इसके समग्र क्षेत्र को हिन्दी भाषा का क्षेत्र कहते हैं । भाषाविदों ने संपूर्ण हिन्दी क्षेत्र को दो भागों में बाँटा है - पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी हिन्दी । पुनः पश्चिमी हिन्दी को आकारबहुला जिसमें कौरवी, हरियाणी और दक्खिनी तथा ओकारबहुला ब्रजभाषा, बुन्देली और कन्नौजी दो वर्गों में विभाजित किया गया है । यहाँ यह कहना असंगत न होगा कि उक्त वर्गीकरण परम्परागत रूप से प्रचार में चला आ रहा है और

मतभेद का विषय बना हुआ है। मतभेद इस विषय पर है कि पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत राजस्थानी वर्ग की उपभाषाओं को और पूर्वी हिन्दी के अन्तर्गत बिहारी वर्ग की उपभाषाओं को स्थान देना चाहिए या नहीं? वस्तुतः इस प्रश्न पर भाषाविदों में मतैक्य नहीं है। पूर्वी हिन्दी की उपभाषाओं एवं बोलियों पर पहले ही पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है। साथ ही पश्चिमी हिन्दी के सम्बन्ध में भी यहाँ विवाद में न पड़कर राजस्थानी को छोड़ते हुए शेष सभी उपभाषाओं का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

### **कौरवी या खड़ीबोली :**

खड़ी बोली के अन्य नाम हैं - हिन्दुस्तानी, नागरी हिन्दी, सर हिन्दी और कौरवी किन्तु वर्तमान इसका खड़ी बोली नाम ही अधिक प्रचलित है। खड़ी का अर्थ है स्टैंडर्ड जैसे - जयपुर की खड़ी बोली राजस्थानी, पूना की खड़ी बोली मराठी। आधुनिक काल में साहित्य, शासन तथा शिक्षा आदि के क्षेत्र में अभिव्यक्ति का माध्यम खड़ी बोली बन गई है। खड़ी बोली शब्द का प्रयोग सामान्यतः दो अर्थों में मिलता है। (1) मेरठ के आसपास बोली जाने वाली ब्रजभाषा (2) हिन्दू उर्दू के शब्दों से युक्त होने पर हिन्दुस्तानी, संस्कृत के शब्दों से युक्त होने पर हिन्दी एवं अरबी-फारसी के शब्दों से युक्त होने पर उर्दू कहलाने वाली भाषा। साहित्य में प्रायः दूसरा अर्थ ही प्रयुक्त होता है। हिन्दी का खड़ी बोली नाम बहुत पुराना नहीं है। इस नाम का सबसे पहले स्वीकार करने वालों में लल्लूलाल, गिलक्राइस्ट तथा सदल मिश्र के नाम प्रमुख हैं। इसके नामकरण के सम्बन्ध में विभिन्न आचार्यों ने अपने अलग-अलग मत प्रस्तुत किए हैं जो निम्नलिखित हैं -

1. लल्लूलाल -सदल मिश्र के शब्दों में -“ खड़ी बोली का अर्थ खरी अथवा विशुद्ध अर्थात् अरबी-फारसी शब्दों से सर्वथा रहित भाषा है।”
2. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के अनुसार -“पुरानी कविता जो मिलती है वह ब्रज भाषा या पूर्वी बैसवाड़ी, अवधी, राजस्थानी और गुजराती में मिलती है अर्थात् पड़ी बोली में पायी जाती है। मेरठ ने पड़ीबोली को खड़ी बोली बनाकर लश्कर (सेना) और समाज के लिए उपयोगी बनाया।” डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी भी इस मत के समर्थक हैं। वे ब्रज और अवधी को पड़ीबोली मानते हैं।
3. डॉ. कामता प्रसाद गुरु के अनुसार -“ब्रजभाषा के ओकारान्त रूपों से मिलान करने पर हिन्दी के आकारान्त रूप खड़े जान पड़ते हैं। बुन्देलखंड में इस भाषा को ठाड़ी बोली या तुर्की कहते हैं।”
4. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार -“ब्रजभाषा की अपेक्षा यह बोली वास्तव में खड़ी - खड़ी (कर्कश) लगती है। कदाचित्त इसी कारण इसका नाम खड़ी बोली पड़ा।”

5. किशोरीदास वाजपेयी के अनुसार - “ इस खड़ी पाई(1) के कारण इसका नाम खड़ी बोली बहुत ही सार्थक है ।”
6. अब्दुल हक के अनुसार - “ खड़ी बोली के माने हिन्दुस्तन में आम तौर पर गँवारु बोली के हैं, जिसे हिन्दुस्तान का बच्चा -बच्चा जानता है ।”
7. टी. ग्राहम बेल ने इस मत का विरोध करते हुए कहा है - “ खड़ी बोली व्यवस्थित एवं प्रचलित भाषा है ।”
8. डॉ. विश्वनाथ प्रसाद के अनुसार - “ खड़ी बोली का अर्थ टकसाली की अर्थात् स्टेंडर्ड भाषा है ।
9. भोलानाथ तिवारी ने सदल मिश्र के मत को ही स्वीकार किया है ।

खड़ी बोली के नामकरण के समान ही इसके आधार के सम्बन्ध में भी विभिन्न मत हैं । डॉ. ग्रियर्सन, डॉ. चटर्जी, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. श्यामसुन्दर दास आदि इसे कौरवों पर आधारित मानते हैं । इस्टविक इसे ब्रज पर आधारित मानते हैं । एच. टी. कोलबुक इसे कन्नौजी पर आधारित मानते हैं । डॉ. हसन खाँ इसे बाँगरू पर आधारित मानते हैं ।

डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार वस्तुतः खड़ी बोली पूर्वी, पंजाबी, दिल्ली और पश्चिमी उत्तरप्रदेश की बोलियों के मिश्रण का एक परितिष्ठित रूप है । दूसरे कुछ विद्वान इसे पंजाबी पर आधारित मानते हैं । वस्तुतः खड़ी बोली नाम अवश्य नया है, किन्तु भाषा नयी नहीं है । साहित्यिक दृष्टि से खड़ी बोली के पाँच विभिन्न रूप हैं - हिन्दी, उर्दू, रेखता, अथवा रेखती, हिन्दुस्तानी तथा दक्खिनी ।

आठवीं शताब्दी से आज तक हिन्दी को तीन अर्थों में ग्रहण किया गया है ।

1. व्यापक अर्थ में
2. सामान्य अर्थ में
3. विशिष्ट अर्थ में

जब तक भारत में मुसलमानों का आगमन नहीं हुआ था तब तक ‘हिन्दी’ शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में होता रहा । व्यापक अर्थ में हिन्दी हिन्द या भारत से सम्बद्ध किसी भी व्यक्ति वस्तु तथा हिन्द या भारत में बोली जाने वाली किसी भी आर्य, द्रविड़ या अन्य भारतीय भाषाओं के लिए प्रयुक्त होती थी। भाषा के सामान्य अर्थ में ‘जबान-ए-हिन्दी’ शब्द का प्रयोग मध्यकालीन फारसी और अरबी साहित्य में मिलता है । छठी शताब्दी के बादशाह नौरो खाँ के राजकवि ने भाषा को ‘जबान-ए- हिन्दी’ की संज्ञा दी है । हिन्दी का यह प्रयोग भारत की समस्त भाषाओं संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश के लिए हुआ है । स्पष्ट है कि ‘हिन्दी’ शब्द का प्रयोग देश के बाहर दो अर्थों में

हुआ - एक देश के अर्थ में और दूसरा भारतीय भाषाओं के अर्थ में । किन्तु आज ये दोनों अर्थ अपना महत्व खो चुके हैं ।

हिन्दी शब्द का प्रयोग एक विशिष्ट अर्थ में भी होता है । प्रारंभ में हिन्दी फारसी और देवनागरी दोनों लिपियों में लिखी जाती थी । कुछ मुसलमानों ने 'हिन्दी' या 'हिन्दवी' की उस शैली का भी प्रचार किया, जिसकी परम्परा फारसी लिपि और उच्चारण में दिल्ली के आसपास वर्तमान थी । दक्खिनी के मुसलमान कवियों ने हिन्दी को एक विशिष्ट शैली में ढाला जो आगे चलकर उर्दू का रूप लेने लगी । हिन्दुओं और मुसलमानों का राजनैतिक विरोध ज्यों ज्यों बढ़ता गया हिन्दी मुसलमानों से दूर होती गई और उसके स्थान पर एक नयी भाषा उर्दू ने ले ली । जिसे बाद में हिन्दी वालों ने हिन्दी की ही एक शैली मान लिया । राजनैतिक तथा सम्प्रदायिक विरोध का परिणाम यह हुआ कि भारत में मुसलमान कवियों ने हिन्दी को फारसी साँचे में ढाल कर उसका नया नाम 'रेखता' रखा । आठवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हिन्दी फारसी शैली में पनपने लगी । रेखता के आधार पर ही औरतों की भाषा बेगमी जबान रेखता कहलाई । हिन्दुस्तानी शब्द मूलतः विशेषण है, जिसका नाम है हिन्दुस्तान का । भाषा के अर्थ में यह हिन्दी के एक रूप के लिए प्रयुक्त होता है । दक्खिनी मूलतः हिन्दी का ही एक रूप है । इसका मूलाधार दिल्ली के आसपास प्रचलित 15-16 शती की खड़ी बोली है । इसका क्षेत्र महाराष्ट्र, बंबई तथा मध्यप्रदेश है । आज उर्दू भाषा के प्रभाव, पुराने रूपों का नवीन विकास तथा तमिल तेलगू आदि शब्द -समूह के प्रभाव के कारण इसका रूप कुछ बदल गया है । इस भाषा को राजाश्रय प्राप्त रहा और इसमें पर्याप्त साहित्य की रचना हुई । वस्तुतः हिन्दी, रेखता, हिन्दुस्तानी तथा दक्खिनी अलग भाषाएँ न होकर हिन्दी की ही शैलियाँ हैं ।

खड़ी बोली का जन्म 1000 ई. के आसपास माना जाता है । खड़ी बोली का आदिकाल का रूप गोरखनाथ, खुसरो, रामानन्द आदि के काव्य में दिखाई पड़ता है । ध्वनि की दृष्टि से इस काल में अपभ्रंश की तुलना में दो नई ध्वनियाँ । ए । औ । आ गर्याँ । रूप की दृष्टि से अपभ्रंश तथा बाद में विकसित शब्द साथ-साथ चलते रहे । इस काल की शब्दावली मुख्यतः तद्भव और देशज थी । तत्सम शब्द अपेक्षाकृत कम थे । कुछ विदेशी शब्द भी आ गए थे ।

खड़ी बोली के मध्यकाल का स्वरूप कबीर, नानक, रैदास, रहीम तथा गंग के काव्य में दिखाई पड़ता है । ध्वनि विकास की दृष्टि से इस काल में व्यंजनान्त 'अ' लुप्त हो गया । जैसे राम का उच्चारण राम् होने लगा । रूपों की दृष्टि से खड़ी बोली अपभ्रंश के प्रभाव से मुक्त हो गई थी । शिक्षित वर्ग में । क्र, । ख । ग । ज । फ़ जैसी नई ध्वनियों का प्रयोग होने लगा । संयुक्त क्रियाओं का प्रचलन नहीं हुआ था । शब्दावली में विदेशी का प्रयोग भी खुलकर होने लगा था । तत्सम शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति बढ़ रही थी ।

आधुनिक काल में खड़ी बोली की विशेष उन्नति हुई । प्रेस, समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, सिनेमा,

विज्ञापन आदि के प्रचार ने इसके विकास में भारी योगदान दिया । 19वीं शती तक खड़ी बोली केवल गद्य की भाषा थी किन्तु बीसवीं तक आते -आते इसका पद्य पर भी एकाधिकार हो गया, साथ ही साहित्य की विविध विधाओं में काव्य रचना होने लगी । लल्लूलाल की रचनाएँ आधुनिक काल और मध्यकाल के संधि स्थल थीं ।

सामान्यतः उत्तरी भारत की सामान्य बोलचाल की भाषा को खड़ी बोली कहते हैं जिसका एक साहित्यिक रूप भी है । अतः क्षेत्र विशेष की बोली के लिए कौरवी नाम ही अधिक उपयुक्त है । सामान्य हिन्दी बोलने वालों की संख्या 22-23 करोड़ के बीच है । किन्तु कौरवी बोलने वालों की संख्या एक करोड़ से अधिक नहीं है । शुद्ध कौरवी गंगा और यमुना के उत्तरी दोआब अर्थात् देहरादून के मैदानी भाग, सहारनपुर , मुजफ्फरपुर , मेरठ के सभी जिले एवं बुलन्दशहर के उत्तरी अधिकांश भाग में बोली जाती है । पश्चिम में यमुना नदी के पार अम्बाला तक, दक्षिण पूरब में बिजनौर जिले और मुरादाबाद तथा रायपुर जिलों के उत्तर भाग की बोली भी कौरवी है ।

### **खड़ी बोली की ध्वन्यात्मक विशेषताएँ :**

1. विशिष्टता या पहचान की दृष्टि से अवधी अकारान्त या व्यंजनान्त है, जैसे - करन, होत, होव, घोर या घोड़, नीक, बड़, खाटे ; ब्रजभाषा ओकारान्त प्रधान है, जैसे - नीको, बड़ो, खोटो, छोरो, आयो, लिनो, होबो, करेगो, करनो, करिवो, घोरो । और खड़ी बोली आकारान्त प्रधान है, जैसे करता, किया, करना, करेगा, बड़ा, छोटा, खोटा, घोड़ा आदि ।
2. । ए । औ । का उच्चारण इतना संवृत होता है कि क्रमशः । ए । ओ । सुनाई देते हैं जैसे- बेट, पेर, ओर, होर, दोरा (बैठ, पैर, और, दौरा ) ।
3. । ह । के पहले । अ । का उच्चारण । ए । की तरह सुनाई पड़ता है ; जैसे - केह्या (कह्या), रेह(रह) आदि ।
4. ठेठ बोली में । ङ । के स्थान पर । ड । जैसे -गाडी(गाड़ी) , बडा(बड़ा)। स्वर मध्यम । ल । के स्थान पर ! ल । जैसे - माल, नीला, (नीळा, माळ और स्वर ल = ल(उच्चारण) मध्मग । न । के स्थान पर । ण । जैसे - जाणा(जाना), जाव्या (जाना-समझा) लेण - देण(लेन-देन) आदि ।
5. खड़ी बोली की एक बड़ी विशेषता है स्वर मध्मग द्वित्वव्यंजन जो दीर्घ स्वर के बाद भी उच्चरित होता है, किन्तु उस स्वर की दीर्घता कुछ कम हो जाती है ; जैसे - बाप्पू, बेट्टा, रान्नी, या राण्णी, लोट्टा, पूच्छा, पुच्छा । बाँगड़ और खड़ी बोली में अन्य हिन्दी

बोलियों की अपेक्षा बलाघात कुछ जोर से पड़ता है । जिसके कारण पूर्ववत्ती दीर्घ अक्षर तो ह्रस्व हो ही जाता है, कभी -कभी ह्रस्व स्वर का लोप भी हो जाता है । जैसे मठाई (मिठाई), कट्टा (इकट्टा) आदि ।

### **व्याकरण सम्बन्धी विशेषताएँ :**

1. संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण कृदन्त आदि रूपों में शब्दांत में । आ । ध्वनि का प्रयोग होता है ; जैसे - भला, मेरा, गया आदि ।
2. संज्ञा शब्दों के रूप प्रायः वही है जो साहित्यिक हिन्दी में हैं ,किन्तु बहुवचन तिर्यक रूप । ऊँ । जैसे - मरदूँ, मरदूँ का, बेटूँ को, एवं वैकल्पिक स्त्रीलिंग बहुवचन लड़कियाँ, लड़की, लड़कियों उल्लेखनीय है । कारकों के अर्थ में निमतनलिखित परसर्ग प्रयुक्त होते हैं ।

कर्त्ता- ने, नें

कर्म तथा सम्प्रदान - को, कूँ, नूँ, ने, के ।

करण तथा अपादान - लें, सेती, सों ।

सम्बन्ध - का, के, की ।

अधिकरण - में, पे, प ।

3. सर्वनाम और उनके विशिष्ट रूप निम्नलिखित हैं -

में, मुझ, मेरा, हम, हमें, हमारा या म्हारा ; तू, तिर्यक- ते, तुझ, तेरा, तम, तमें, तुम्हारा या थारा ; यू, यो (स्त्रीलिंग या) तिर्यक इस ; आ, वोह(स्त्रीलिंग वाः) जो । जोण ; के । कोण ; के (क्या) आप, अपणा ; को (कोई) ।

4. कुछ क्रिया विशेषण हैं - कै(कितने), असे(ऐसे), जसे(जैसे), इस(अब), इमी(अभी), जिव-तिव(जब-तब), हाँ(वहाँ), जाँ (जहाँ), कीकर(कैसे) क्यूँ(क्यों), नूँ(यों) , जूँ(ज्यों) ।

5. खड़ी बोली के क्रियात्मक रूप साहित्यिक हिन्दी के समान हैं, किन्तु । है । का उच्चारण । हे । और विकल्प से । है । के स्थान पर । सै । का प्रयोग भी होता है, जैसे- लाया करे सै(लाया करता है) ।

दूसरी विशेषता यह है कि वर्तमान कृदन्त का जो रूप साहित्यिक अथवा सामान्य हिन्दी में काल और अर्थ बनाने में प्रयुक्त होता है, उसकी जगह खड़ी बोली में क्रिया रूप के विकसित अकृदन्तीय प्रयोग चलते हैं ।

6. भूत अपूर्ण निश्चयार्थ के । मारूँ था । मारे था । आदि रूप भी इसी से बने हैं । भविष्यत् काल के रूप इनमें । ग । गे । गी । जोड़कर सामान्य हिन्दी की तरह होते हैं । इनका उच्चारण भले ही मारूँगा । जाँँगे । करके होता है । पश्चिमी में पंजाबी प्रभाव के कारण खाँँगा । जाँँगे । आदि रूप भी पाए जाते हैं ।
7. भूतकालिक कृदन्तीय रूप एकवचन में (रिह्या । उट्या । आदि और बहुवचन में सामान्य हिन्दी के समान । रहे । उठे । बनते हैं, यद्यपि उच्चारण में । ह । की अल्पप्राणता और व्यंजन के द्वित्व के कारण अन्तर अवश्य पाया जाता है । करणा से कर्या, जाणा से जिआ बनता है ।
8. आज्ञार्थ में सुन, सुनो, सुनिए, सुनियो साधारणतः सम्पन्न होते हैं । पूर्वकालिक क्रिया में । कर । की अपेक्षा । के । का प्रयोग अधिक व्यापक है । जैसे - सुन के, उठ के ।

### हरियाणी(बाँगरु) :

स्थान और बोली दोनों ही जाति के अनुरूप यह बोली कई नामों से व्यवहृत होती है । हरियाणा के आसपास इसको हरियानी अथवा हरियाणवी कहते हैं । कुछ लोग देश की भाषा के कारण दसाड़ी भी कहते हैं । रोहतक तथा दिल्ली के आस-पास जाटों की अधिक आबादी के कारण इसे जाटू तथा दिल्ली के चमारों की आबादी के कारण चमरवा बोली भी कहते हैं । बाँगर प्रदेश से सम्बन्धित होने के कारण इसे बाँगरु नाम से भी अभिहित किया जाता है । नामों से स्थानीय भेद होते हुए भी वास्तव में इन सभी बोली विभेदों में प्रायः समानता है ।

अम्बाला से दक्षिण -पश्चिम के भूभाग को हरियाणा कहते हैं । इसके अन्तर्गत दिल्ली प्रदेश, रोहतक और करनाल के पूरे जिले, जींद और नामा हिसार का पूर्वी भाग और पटियाला का दक्षिण -पूर्वी प्रांत सम्मिलित है । इस क्षेत्र की बोली को ग्रियर्सन ने बाँगरु कहा है । किन्तु बाँगर तो केवल करनाल जिले के आस-पास का क्षेत्र है । बाँगरु से तात्पर्य उस उच्च एवं शुष्क भूमि से है जहाँ नदी की बाढ़ नहीं पहुँच पाती । पूरब तथा उसके आस-पास की भूमि -भाग हरियाना के नाम से प्रख्यात है । लोक में 'हरियाणा' नाम अधिक प्रचलित है । 'हरियाणा' शब्द की व्युत्पत्ति 'हरियान', हर्यरण्य(हरावन), हरिण्यारण्य, हरैया(उदण्ड पशु) आदि से सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है । हीराना से हरियाणा बना । इसका सम्बन्ध 'अहीर' (इस बोली में हीर कहते हैं) से है । अहीर या जाट भी इसी प्रदेश में सबसे अधिक हैं । हरियाणा बोलने वालों की संख्या 30-32 लाख से अधिक नहीं है । इस बोली में लोकगीत अवश्य प्रकाशित हुए हैं लेकिन एक विशेष एवं उच्चकोटी का साहित्य नहीं प्राप्त होता है ।



### ध्वन्यात्मक विशेषताएँ :

1. हरियाणी और खड़ी बोली में बहुत कम अन्तर है । ध्वनियाँ प्रायः सब की सब वही हैं । हिन्दी । न । के स्थान पर । ण । का प्रयोग बहुलता से मिलता है । जैसे - अपना-आपणा । होना - होणा । आदि ।
2. मूर्धन्य । ल । का प्रयोग भी बहुलता से मिलता है, जैसे काल-काळ ।
3. । ड़ । की ध्वनि के स्थान पर । ड । प्रयोग मिलते हैं, जैसे बड़ा-बडा ।
4. द्वित्व व्यंजनों का प्रयोग बहुलता से मिलता है । द्वित्व व्यंजनों के पूर्ववर्ती स्वर ('अ' को छोड़कर) ह्रस्व हो जाते हैं, जैसे भीतर -भित्तर ।
5. ध्वनि लोप की प्रवृत्ति बहुत मिलती है, जैसे अंगूठा -गूठा, इकतिस - कतिस ।

### व्याकरणात्मक विशेषताएँ :

1. संज्ञा के रूपों में तिर्यक रूप बहुवचन आँकारान्त होता है, जैसे घरों से, छोहरियाँ ने । घोड़ो - घोड़ां । दिनो -दिनां ।
2. परसर्गों का प्रयोग भी हिन्दी की अन्यान्य बोलियों से बहुत कुछ भिन्नता रखता है, जैसे । ने । परसर्ग का प्रयोग कर्ता के लिए ने होकर सम्प्रदान के लिए होता है, जैसे - परदेस ने (परदेस को, परदेस के लिए) इसी प्रकार । की । क । के स्थान पर । ती । तौ । परसर्गों का प्रयोग होता है ।
3. सम्प्रदान एक अतिरिक्त परसर्ग । की त्यों । और अधिकरण में अतिरिक्त । महँ, । माँह । उल्लेखनीय है ।
4. अन्यपुरुष एकवचन में पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग रूप अलग हैं - । योह (पु.) ।, याह । (स्त्री.) । वोह (पु.) ।। वाह (स्त्री.) आदि
5. सर्वनाम रूप कहीं पंजाबी और कहीं राजस्थानी से मेल खाते हैं । जैसे मन्ने, तन्ने - सै - सूँ (है -हूँ)
6. क्रिया में दो बातें ध्यान देने योग्य हैं ; एक तो सहायक क्रिया । है । हैं । हूँ । के स्थान पर । सै । सैं । सूँ । होता है । दूसरा वर्तमान कालिक कृदन्त हिन्दी की तरह । ता । भी होता है, और पंजाबी की तरह । दा । भी जैसे -करता । करदा, मिलता । मिलदा आदि । अधिकतर क्षेत्र में । दा । का रूप व्याप्त है ।

7. कौरवी की तरह वर्तमान में । मैं मरूँ सूँ ।, मारौँ सूँ, मैं मारूँ । मारौँ । मैं मारदा सूँ आदि विविध रूप एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।
8. पूर्वकालिक क्रिया में । कै । और संज्ञार्थक क्रिया । मारण । मारणा उल्लेखनीय हैं ।
9. भूतकालिक कृदन्त रूपों में- त्या का प्रयोग होता है, जैसे चल्या -(चला), राख्या -(रखा) । ध्वनि विकास की दृष्टि से हरियाणी पंजाबी और कौरवी के बीच की स्थिति है ।

## दक्खिनी :

दक्खिनी मूलतः हिन्दी का ही एक रूप है । इसका मूलाधार 14-15 वीं शती में दिल्ली के आस-पास प्रचलित खड़ी बोली है । मुलसमानों ने भारत आने पर इस बोली को अपनाया था । चौदहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में दिल्ली के सुल्तानों ने हरियाणा और कुरु प्रदेश के लोगों को दक्षिण में दौलताबाद और उसके आस-पास बसाया । धीरे-धीरे दक्षिण में गुलवर्गा, बीजापुर, गोलकुंडा बीदर और बरार पाँच स्वतंत्र राज्य स्थापित हुए । औरंगजेब ने इन राज्यों को नष्ट कर दिया और सन् 1632 ई. में हैदराबाद में पुनः स्वतंत्र निजाम की स्थापना हुई । समय -समय पर वहाँ जाकर बसने वाले फौजियों, फकीरों, धर्मप्रचारकों राजकर्मचारियों तथा रोजगार की तलाश में जाने वाले अन्य लोगों की पीढ़ियाँ महाराष्ट्र और हैदराबाद के अलावा गुजरात और मद्रास में आकर बसने लगीं । इस प्रकार उनकी भाषा दक्षिण भारत पहुँची और वहाँ प्रमुखतः मुसलमानों और उत्तर के कुछ हिन्दुओं में प्रचलित हो गयीं । ये लोग अपनी भाषा को हिन्दी या हिन्दवी कहते आ रहे हैं । अनुमानतः इनकी संख्या 40 लाख के लगभग है । इसका क्षेत्र महाराष्ट्र, बम्बई, तथा मध्यप्रदेश है । डॉ. भोलानाथ तिवारी इसे प्राचीन खड़ी बोली मानते हैं । डॉ. ग्रियर्सन उत्तर भारत की साहित्यिक हिन्दुस्तानी को इसका बिगड़ा रूप तथा डॉ. चटर्जी इसे हिन्दुस्तानी की सहोदरा मानते हैं । बोली के रूप में इसे दक्खिनी या केवल दक्खिनी भी कह सकते हैं । यह बोली उनकी शिक्षा, साहित्य, शासन और विचार -विनियम का माध्यम रही है । वर्तमान में उर्दू भाषा के प्रभाव स्वरूप, पुराने रूपों के नवीन विकास तथा तमिल - तेलगू आदि शब्द समूह के प्रभाव के कारण दक्खिनी हिन्दी का रूप कुछ बदल गया है । इसमें पर्याप्त साहित्य की रचना हुई है । ख्वाजा बंदनवाज, गैसूदराज, निजामी, मुहम्मद कुली, कुतुबशाह वजही आदि बड़े-बड़े कवि दक्खिनी बोली में अपना साहित्य छोड़ गए हैं । अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से साहित्य और शासन की भाषा उर्दू हो गयी ।

आज हिन्दी वाले इसे दक्खिनी हिन्दी अथवा हिन्दी कहकर अपनी भाषा और साहित्य का

अंग मानते हैं । और उर्दू वाले उर्दू या दक्खिनी उर्दू कह कर इसे अपनी भाषा में मिलाने का प्रयत्न कर रहे हैं । वास्तव में तथ्य यह है कि दक्खिनी भाषा और उसका साहित्य हिन्दी के निकट है । उर्दू वस्तुतः हिन्दी की एक सशक्त शैली है । किसी भी दक्खिनी हिन्दी के लेखक ने अपनी भाषा के लिए उर्दू शब्द का प्रयोग नहीं किया है । अतः दक्खिनी हिन्दी ही हिन्दी है ।

### **ध्वन्यात्मक विशेषताएँ :**

1. दक्खिनी और खड़ी बोली में बहुत कम अन्तर है । अस्मान, गुंगे, भिगाना, सुंगना, मिट्टा, सुक्का(सुख) किच्चड़ आदि में ह्रस्व स्वर और द्वित्व व्यंजन निश्चित करते हैं कि यह पंजाबी के अधिक निकट है ।
2. । न्द । या । ' न्ध' । के स्थान पर । न । और 'म्ब' के स्थान पर । म्म । बोला जाता है, जैसे - चाननी (चान्दनी), फुनना(फुन्दना), गूनना(गूँथना), बानना(बांधना), गुम्मज (गुम्बज) , कम्मल (कम्बल) आदि ।
3. । ड । की अपेक्षा । ड । प्रयोग अधिक व्यापक है ।

### **व्याकरणात्मक विशेषताएँ :**

1. बहुवचन हरियाणी के अनुरूप बनते हैं ।
2. कारकीय परसर्गों में हरियाणी के रूपों के अतिरिक्त कर्म में । कू । सम्प्रदान में । के । तई । करण में । सू ।, सम्बन्ध में । क्यौं । केरा । और अधिकरण में । मने । पो । आदि भी चलते हैं ।
3. सर्वनाम तो वही हैं किन्तु रूपों में । मुंजे । हम । हमम । हमना । तुमना । उल्लेखनीय है ।
4. विशेषणों में सर्वनाम में स्त्रीलिंग बहुवचन होता है । जैसे पंजाबी में - ऐसियाँ, औरतों, अच्छियाँ, लड़कियाँ ।
5. संज्ञार्थक क्रिया । बोलन । बोलना ।, करत । करता ;  
वर्तमान कालिक- कृदन्त देखता । देखत ;  
पूर्वकालिक क्रिया - । चलि । चलके । चलकर ;  
सहायक क्रिया- । अच्छे । हैं । ;  
भविष्यत् रूप - । होंगे । होसन । विशेष विचारणीय हैं ।  
शेष रूप खड़ी बोली के समान हैं ।

## **पश्चिमी हिन्दी (ओकारबहुला ) ब्रजभाखा अथवा अन्तर्वेदी :**

### **ब्रजभाषा :**

ब्रजभाखा का एक नाम ब्रजभाषा भी है । यह ब्रजमंडल की भाषा है । गंगा-यमुना का दो आब आर्यों की पवित्र भूमि होने के काण अन्तर्वेद कहलाता है । इसी कारण ब्रजभाषा को (अन्तर्वेदी) भी कहते हैं । इन दोनों नामों में से किसी के द्वारा भी ब्रजभाषा के संपूर्ण क्षेत्र का परिचय नहीं मिलता । ब्रजमंडल का क्षेत्र मोटे तौर पर आधुनिक मथुरा जिला है । इसीके अंतर्गत कृष्ण की लीला भूमि गोकुल तथा वृन्दावन है किन्तु ब्रजभाषा का क्षेत्र इससे अधिक विस्तृत है ।

ब्रजभाखा के लिए संक्षिप्त रूप से 'ब्रज' शब्द का ही प्रयोग किया जाता है । उधर दो आब -आगरा, एटा मैनपुरी, फर्रुखाबाद तथा इटावा की बोली को अन्तर्वेदी कहा जाता है । इसमें से फर्रुखाबाद तथा इटावा की भाषा तो कनौजी है तथा शेष की भाषा ब्रज है ।

ब्रजभाषा में मथुरा, आगरा, अलीगढ़, भरतपुर के अधिकांश भाग, धौलपुर, करौली, ग्वालियर के पश्चिम भाग तथा जयपुर के पूर्वी भाग में बोली जाती है । यह उत्तर में यह गुड़गाँव के पूर्वी भाग में, उत्तर -पूरब दो आबों में यह बुंदेलशहर, अलीगढ़, एटा, मैनपुरी तथा गंगापार के बदायूँ, बरेली तथा नैनीताल की तराई में बोली जाती है । इसका कुल क्षेत्रफल 26 हजार वर्गमील है तथा बोलने वालों की संख्या एक करोड़ तीस लाख के लगभग है । इसके अन्य नाम हैं - ब्रजी, ब्रिज, ब्रिजकी, भाषामणि, मथुरा, मथुरही, पुरुषोत्तम भाषा तथा नागभाषा । कुछ लोग ब्रिजबुलि को भी ब्रजभाषा समझते हैं । परंतु यथार्थतः ब्रजभाषा का इससे कोई खास सम्बन्ध नहीं है । ब्रजबुलि बंगला का एक कृत्रिम रूप है, इसमें बंगला, मैथिली और ब्रज का मिश्रण है ।

नैनीताल की मुक्सा, एटा, मैनपुरी, बरेली और ब्रज की अन्तर्वेदी, धौलपुर और पूर्वी जयपुर की डांग, गुड़गाँव, भरतपुर की मिश्रित, करौली की जाटौवादि इसकी प्रमुख बोलियाँ हैं ।

ब्रजभाषा का साहित्य अत्यन्त समृद्ध है । वल्लभ सम्प्रदाय के अष्टछाप के कवियों तथा केशव, रसखान, रहीम, बिहारी, देव, मतिराम, आदि ने इसी भाषा में उच्चकोटी का साहित्य रचा । ब्रजभाषा की लोकप्रियता इतनी बढ़ी कि समस्त उत्तर भारत में यह काव्य भाषा के रूप में गृहीत हुई । नार्थों और संतों की वानियों में ब्रजभाषा का व्यापक व्यवहार हुआ । सूरदास और नन्ददास ने ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप देने में सबसे अधिक योगदान दिया । साहित्यिक रचनाओं के अतिरिक्त ब्रजभाषा का लोकसाहित्य भी अन्यन्त महत्वपूर्ण है ।

### **ब्रजभाषा की ध्वन्यात्मक विशेषताएँ :**

1. ब्रजभाषा की ध्वनिगत विशेषताओं में सबसे उल्लेखनीय तत्व यह है कि यह अन्य

- विभाषाओं की अपेक्षा सही रूप में पश्चिमी हिन्दी का प्रतिनिधित्व करती है जैसे -
- क) इसमें अपभ्रंशकालीन अन्य स्वरों के साथ ऐ-औ ध्वनियाँ मिलती हैं ।
- ख) इसमें अपभ्रंशकालीन अन्य व्यंजनों के अतिरिक्त । रह । न्ह । म्ह । ल्ह । ध्वनियाँ भी मिलती हैं ।
- ग) इसमें तीन सकारों - श्, ष्, स्, में से केवल स् मिलता है ।
- घ) इसमें । ए । ओ । के ह्रस्व रूपों का प्रयोग मिलते हैं ।
- ङ) इसमें । ऋ । के स्थान पर । रि । अथवा । र । मिलते हैं ।
- च) इसमें आदि और मध्यस्थ । अ । के स्थान पर कभी-कभी । इ । मिलती है । जैसे - तस्य -तिस्स, तिसु, । कपाट -कवाड़, किवाड़ आदि ।
- छ) ब्रजभाषा में । व । के स्थान पर । म । का आदेश मिलता है, जैसे - पावेंगे -पामेंग । आवतु - आमतु ।
- ज) आधुनिक ब्रजभाषा में । ण । के स्थान पर । न । मिलता है, । ण । लिखे जाने पर भी उच्चारण में । न । जैसा हो जाता है । जैसे प्रवीण -प्रवीन । तरुणी -तरुनी । वेणु - वेनु । चरण - चरन ।
- झ) हिन्दी की - । ड । ड । ल । ध्वनियों के स्थान पर ब्रज में । र । ध्वनि हो जाती है । जैसे - घड़ा-घर्षा । पड़ा -पर्यौ । उलझना - उरझना ।

### व्याकरण सम्बन्धी विशेषताएँ :

- ब्रजभाषा की व्याकरण सम्बन्धी विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -
- क) खड़ी बोली हिन्दी की अकारान्त संज्ञाओं के स्थान पर ब्रजभाषा में ओकारान्त संज्ञाएँ मिलती हैं, जैसे- लड़का - लड़के । तिनका - तिनको । कारा- कारो ।
- ख) ब्रजभाषा में कर्त्ता -बहुवचन में । न । नि - जैसे श्रवनन, टृगनि, कर्म एकवचन और बहुवचन में - हि । हिं । जैसे - कैलासहिं, तिहाई, करण एकवचन में । हि । जैसे - ताहि । अधिकाण में । हि । इ । ए । जैसे - तिनहिं तथा सम्बन्ध एकवचन में - । ह । जैसे - तिन्ह का प्रयोग होता है ।
- ग) ब्रजभाषा में निम्नपरसर्ग का प्रयोग होता है -
- कर्त्ता - ने, नें, नै, नैं ।
- कर्म - कों, कू ।

|           |   |                                 |
|-----------|---|---------------------------------|
| करण       | - | सौं, तन, त, तैई ।               |
| सम्प्रदान | - | कई, ताई, हेत, लागे ।            |
| अपादान    | - | हूँ, तौ, तै, सौ ।               |
| सम्बन्ध   | - | कउ, का, के, की ।                |
| अधिकरण    | - | मांहि, मांझि, में, माँ, मञ्जि । |

- घ) ब्रजभाषा के प्रेरणार्थक क्रिया बनाने के लिए । अ । आ । आउ । ब । आदि प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है, जैसे -चलिइऔ, चलाउ, चलाइहै, चलाउँगो, चलकाउ, चलवाओ ।
- ङ) वर्तमानकालिक कृदन्त में त-त प्रत्यय लगाए जाते हैं, जैसे - खेलत । भविष्यत् काल में । गा । गे । गी । के अतिरिक्त । गी,इह,एह । हैं । प्रत्यय लगाए जाते हैं, जैसे -पढ़ेगा । मारैगो, होइहौं आदि ।
- च) क्रियात्मक संज्ञाएँ - । व । तथा । ल । लगाकर बनती हैं - जैसे - खेलनो, चलिबो । ब्रजभाषा का नाम पिंगल भी है, जो कादचित् राजस्थानी भाषा डिंगल के अनुकरण पर पड़ा है । पिंगल मुनी छन्दशास्त्र के रचयिता थे । उनके नाम पर ही छन्दशास्त्र 'पिंगल' कहलाया और छन्दों की दृष्टि से व्यवस्थित भाषा भी पिंगल कहलाई ।

## बुन्देली :

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, बुन्देली अथवा बुन्देलखंडी वस्तुतः बुन्देलखंड की भाषा है । बुन्देला राजपूतों का प्रदेश होने के कारण इस क्षेत्र को बुन्देलखंड और इसकी भाषा को बुन्देलखंडी या बुन्देली कहा जाता है । चौदहवीं शताब्दी के प्रारंभ में यहाँ पर बुन्देला राजाओं का शासन रहा है । इंडिया गजेटियर के अनुसार बुन्देलखंड की सीमा उत्तर में यमुना नदी, उत्तर तथा पश्चिम में चम्बल नदी, दक्षिण में मध्यप्रदेश के जबलपुर तथा सागर जिले तथा दक्षिण -पूरब में रीवा अथवा बघेलखंड एवं मिर्जापुर के पर्वत हैं किन्तु वास्तव में बुन्देली की यही सीमा नहीं है । उदाहरण स्वरूप बाँदा इसी सीमा के अन्तर्गत आता है, किन्तु वहाँ की बोली बुन्देली नहीं है, अपितु पूर्वी हिन्दी की बघेली है । इसके अतिरिक्त झाँसी कमिश्नरी के अन्य जिले - झाँसी, जालौन तथा हमीरपुर -बुन्देली भाषा -भाषी ही हैं ।

चम्बल नदी वस्तुतः ग्वालियर की उत्तरी तथा पश्चिमी सीमा निर्धारित करती है, किन्तु उत्तर में बुन्देली चम्बल नदी तक ही नहीं बोली जाती है, अपितु उससे आगे आगरा, मैनपुरी तथा इटावा, के दक्षिण में भी बोली जाती है । पश्चिमी में यह चम्बल नदी तक नहीं बोली जाती, क्योंकि

पश्चिमी ग्वालियर में ब्रजभाषा तथा राजस्थानी की विभिन्न उपभाषाएँ बोली जाती हैं । दक्षिण में इसकी सीमा, बुन्देलखंड सीमा से बहुत दूर तक आगे चली जाती है । इधर यह केवल सागर, दमोह, तथा भोपाल के पूर्वी भाग में ही नहीं आपितु मध्यप्रदेश के नरसिंहपुर, होशंगाबाद तथा शिवनी तक पहुँच जाती है । बालाघाट के लोर्धा तथा छिन्दवाड़ा के मध्यभाग की जनता भी एक प्रकार की मिश्रित बुन्देली बोली, बोलती है । इसी प्रकार नागपुर के मैदान की भाषा यद्यपि मराठी है, तथापि यहाँ भी मिश्रित बुन्देली बोलने वाली अनेक जातियाँ बस गई हैं । बुन्देली बोलने वालों की संख्या 60 लाख तक अनुमानित की गई है ।

आदर्श बुन्देली भाषा-भाषियों के अनुसार इसकी उपभाषाओं के अन्तर्गत पँवारी, लोधान्ती, राठौरी एवं खटोला बोलियों का समावेश है । पँवारी बोली ग्वालियर की उत्तर-पूर्व दतिया तथा उसके पड़ोस में बोली जाती है । यहाँ पँवार राजपूतों की प्रधानता है । लोधान्ती अथवा राठौरी बोली हमीरपुर के राठ परगने तथा जालौत के पड़ोस में बोली जाती है क्योंकि इधर लोधी लोगों की आबादी अधिक है ।

मिश्रित बोलियों में पूर्व की बनाफरी, कुंड्री तथा निभट्टा है । जो क्रमशः पूर्व की पूर्वी हिन्दी तथा पश्चिम में ब्रजभाषा की भदावरी में अन्तर्भुक्त हो जाती है । इनमें बनाफरी अत्यन्त महत्वपूर्ण है । कुंड्री बोली हमीरपुर तथा बाँदा को पृथक करने वाली नदी के दोनों तटों पर बोली जाती है ।

बुन्देली में अधिक साहित्य नहीं है । आल्हखंड मूलतः बुन्देली में लिखा गया है । किन्तु इसका वर्तमान रूप फरुखाबाद के कलेक्टर ने आज से पचास-साठ वर्ष पहले अल्हैतों से गवाकर तैयार करवाया था, जिसमें विभिन्न बोलियों का समावेश हो गया । केशवकृत 'रामचंद्रिका' में भी बुन्देली शब्द मिलते हैं, किन्तु लालकृत - 'छत्र-प्रकाश' की भाषा अधिकांश रूप में बुन्देली है । बुन्देली के कतिपय साहित्य विशेषज्ञों का कहना है कि तथाकथित ब्रजभाषा साहित्य वस्तुतः बुन्देली साहित्य है । ठेठ बुन्देली में ऐनसाई की दार्शनिक कविताएँ, इसुरी की फागें और गंगाधर के प्रेम काव्य प्रसिद्ध है ।

### **ध्वन्यात्मक विशेषताएँ :**

1. बुन्देली और ब्रजभाषा में घनिष्ठ सम्बन्ध हैं । बुन्देली में ब्रजभाषा की तरह उकारान्त - इकारान्त संज्ञाएँ नहीं हैं । जैसे घर - (ब्रजभाषा - घरु), सौत (ब्रजभाषा सौति), घोरो के अतिरिक्त घुरवा और लाठी के अतिरिक्त लठिया जैसे - रूप अवधी से मिलते - जुलते हैं ।
2. ब्रजभाषा की । ऐ । औ । तथा ड ध्वनियाँ बुन्देली में ए । ओ । तथा । र । हो जाती

है । जैसे झगड़ो - झगरौ । छोड़ो - छोरो ।

3. स्वर के मध्य । ह । का लोप हो जाता है, जैसे- कहीं- कई, कही-कई ।
4. शब्द के आदि का य, ज में और व, ब में बदल जाता है , जैसे - यदि -जदि, विचार - बिचार ।

### **व्याकरणात्मक विशेषताएँ :**

1. बुन्देली ओकारात्मक -बहुल भाषा है । हिन्दी में संज्ञा, सर्वनाम, तथा कृन्दत्त के रूपों में जहाँ अंत्य । आ । ध्वनि मिलती है, वहाँ बुन्देली में । ओ । मिलता है, जैसे - ब्रजभाषा में भला, बुरा, मेरा, गया आदि का बुन्देली रूप - भलो, बुरो, मेरो, गयो आदि ।
2. संज्ञा के मूल तथा विकृत एकवचन और बहुवचन के रूप ब्रजभाषा के ही समान हैं, जैसे गइया -गइयन(गाय), विन्न -बिन्नू (बहिन) , गोड़न - गोड़न(घुटना) ।
3. सर्वनाम रूपों के मध्यम तथा उत्तम पुरुष, सम्बन्ध कारक । में । से । के स्थान पर । ओ । हो जाता है, जैसे हमारो - हमाओ । तुम्हारो - तुम्हाओ ।
4. बुन्देली में परसर्गों का प्रयोग इस प्रकार है -  
कर्त्ता -ने, कर्म- खाँ, खौँ ।  
करण तथा अपादान में - सैं ।  
सम्प्रदान - के , लानैं, के लानैं ।  
सम्बन्ध - कौ, के, की, खौ, खे, खी ।  
अधिकारण - मैं, पै, पर ।
5. सामान्य क्रिया के साथ सहायक क्रिया की सन्धि हो जाने से विचित्र रूप हो जाते हैं, जैसे- मारत (ह) तो - मारतो ;, नई आर्यैं - नाइयाँ इत्यादि ।
6. संज्ञार्थक क्रिया के दो रूप हैं - मारबौ, मारनै ।
7. कुछ मुहाबरेदार प्रयोग विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, जैसे - मो पै जो काम न हुइए - मुझ से यह काम नहीं होगा ।  
वाने बैठो - वह बैठा । वाने चाउत तो - वह चाहता था । ताखों के पीछे - उसके पीछे । बुन्देली में बहुत से शब्द ऐसे मिल जाते हैं जो हिन्दी की अन्य बोलियों में नहीं हैं ।



## कन्नौजी :

कन्नौजी का नामकरण कन्नौज - नगर के नाम पर हुआ है । यह नगर गंगा के तट पर फर्रुखाबाद जिले में आज भी वर्तमान है । कन्नौजी शब्द वस्तुतः कान्यकुब्ज का विकसित रूप है । रामायण में भी इसका उल्लेख मिलता है तथा अरब -इतिहास लेखकों ने भी इसकी चर्चा की है । प्राचीन युग में कान्यकुब्ज प्रदेश की इतनी अधिक प्रतिष्ठा एवं समृद्धि बढ़ी कि ब्राह्मणेतर जातियों ने भी इसे अपने नाम के साथ संयुक्त करने में अपना गौरव माना । कन्नौजी से वस्तुतः इस कन्नौज प्रदेश की भाषा से ही तात्पर्य है ।

शुद्ध कन्नौजी दोआब के इटावा, फर्रुखाबाद एवं गंगा के उत्तर शाहजहाँपुर में बोली जाती है । यह कानपुर तथा हरदोई जिलों में भी बोली जाती है, किन्तु हरदोई में पूर्वी-हिन्दी की उपभाषा, अवधी से इसका मिश्रण होने लगता है । इसी प्रकार कानपुर की कन्नौजी में अवधी के अतिरिक्त बुन्देली का भी प्रभाव परिलक्षित होता है । शाहजहाँपुर के उत्तर में स्थित पीलीभीत की बोली भी कन्नौजी ही है, परन्तु यहाँ से ब्रजभाषा का मिश्रण शुरू हो जाता है ।

कन्नौजी के पश्चिम तथा उत्तर पश्चिम में ब्रजभाषा तथा दक्षिण में बुन्देली का क्षेत्र है । कन्नौजी की भाँति दोनों ही पश्चिमी हिन्दी की विभाषाएँ हैं । डॉ. ग्रियर्सन ने केवल जनमत के कारण ही इसे स्वतंत्र भाषा माना है, और डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने भी इसे ब्रजभाषा के अन्तर्गत ही स्वीकार किया है । डॉ. ग्रियर्सन ने इसका विस्तार क्षेत्र इटावा, फर्रुखाबाद, शाहजहाँपुर, कानपुर, हरदोई जिलों को माना है । फर्रुखाबाद के अन्तर्गत कन्नौज इस भाषा का केन्द्र है ।

कन्नौजी का क्षेत्र सीमित होने के कारण इसमें अधिक बोलियों के लिए अवकाश नहीं है, साथ ही यह पड़ोस की बोलियों से भी पर्याप्त रूप से प्रभावित है, फिर भी 'तिरहारी' इसकी प्रमुख बोली है, इस पर भी बुन्देली का अत्यधिक प्रभाव है । यमुना के दक्षिणी किनारे की बोली भी तिरहारी ही कहलाती है । इसमें साहित्य नाममात्र को भी नहीं है, पर लोक साहित्य का प्रकाशन अवश्य हुआ है । इस प्रदेश के ख्याति प्राप्त कवियों में - चिन्तामणि, मतिराम, भूषण, वीरबल आदि ने ब्रजभाषा में ही अपनी रचनाएँ की हैं । बोलने वाले की संख्या 44-45 लाख के लगभग है ।

## ध्वन्यात्मक विशेषताएँ :

1. इसकी वर्णमाला -स्वर और व्यंजन ब्रजभाषा की वर्णमाला से मिलती है ।
2. कन्नौजी में ब्रजभाषा के । ऐ । औ । के स्थान पर । ऐ । ओ । का प्रयोग अधिक मिलता है, जैसे - बड़ो, गओ, चलो आदि ।
3. कन्नौजी में स्वर मध्यस्थ । ह । का लोप हो जाता है, जैसे - कहि हैं ।

कइयौं, जाहिं - जाई आदि ।

4. मध्यम । व । अवधी की तरह । उ । उच्चारित होता है, जैसे -  
ब्रजभाषा के सोवत का सोउत ।
5. । ऐ । औ । को संयुक्त स्वर करके । अइ । अउ । उच्चरित किया जाता है, जैसे -  
कौ, का, कउ । कौन का कउन ।
6. ब्रजभाषा की । व । श्रुति का कन्नौजी में अभाव है, जैसे - ब्रजभाषा गयो, भयो का  
गओ, भओ होता है ।

### **व्याकरण सम्बन्धी विशेषताएँ :**

1. इसमें अकारान्त शब्द बहुवचन के तिर्यक रूप में एकारान्त न होकर अकारान्त ही रहते हैं, जैसे - लरिका, लरिका की ।
2. कन्नौजी में परसर्गों का प्रयोग इस तरह होता है -  
कर्ता - ने । कर्म- सम्प्रदान - को, का । करण -अपादान - से होती, सनु, ते, करि,  
करिके । सम्बन्ध - को, के, की । अधिकरण -माँ, मैं, मौं, पर, लौं आदि ।
3. संज्ञा, सर्वनाम में कुछ अतिरिक्त परसर्ग भी प्रयुक्त होते हैं, जैसे कर्म में । का । की ।  
सम्बन्ध में । कर ।, अधिकरण में । माँ । मँह । ये परसर्ग अवधी से आ मिले हैं ।  
ई (यह), और उ(वह) सर्वनाम अवधी से आए हैं । संज्ञार्थक क्रिया के मारन, मारनु,  
मारनो, और मारिबो अनेक दिशाओं से आ गए हैं ।  
भविष्यत् काल में । हुइ हौं । चलिहैं आदि पूर्वी रूप प्रचलित हैं ।
4. बहुवचन हिन्दी में । लोग । के स्थान पर । ह्यार । का प्रयोग होता है । जैसे -  
हम ह्यार (हम लोग) । शेष काल रचना ब्रज के अनुसार होती है ।
5. वर्तमान कालिक सहायक क्रिया के रूप में - । हूँ । है । हैं । आदि हैं ।  
भूतकालिक क्रिया के रूप - । था । थे । थी । हतो । हती । हते । हतीं आदि  
भविष्यत्कालिक क्रिया के रूप । गा । गे । गी आदि हैं ।  
। के । के प्रयोग से पूर्वकालिक क्रिया सम्पन्न होती है, जैसे मारके, मारिके ।

## पश्चिमी खण्ड - (राजस्थानी हिन्दी) :

भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से राजस्थानी पर विचार करते हुए डॉ. श्यामसुन्दर दास का कथन है - “साहित्यिक तथा राष्ट्र की दृष्टि से राजस्थानी को हिन्दी की विभाषा माना जा सकता है, पर भाषाशास्त्र की दृष्टि से यह एक स्वतंत्र भाषा है। राजस्थानी हिन्दी की अपेक्षा गुजराती के अधिक निकट है। ये दोनों भाषाएँ वास्तव में परस्पर इनती सम्बद्ध हैं कि दोनों को एक ही भाषा की दो विभाषाएँ मानना अनुचित न होगा। आजकल ये दो स्वतंत्र भाषाएँ मानी जाती हैं। दोनों में स्वतंत्र साहित्य की रचना हो रही है। राजस्थानी की स्वयं चार बोलियाँ हैं - मेवाती, मालवी, मारवाड़ी और जयपुरी। इस प्रकार भाषाशास्त्र की दृष्टि से हम राजस्थानी को हिन्दी की बोली नहीं मान सकते। किन्तु साहित्यिक दृष्टि से अवश्य राजस्थानी साहित्य की गणना हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत होती है।” यहाँ हम राजस्थानी की बोलियों का सामान्य परिचय देंगे।

### 1. मारवाड़ी :

मरुभूमि, मरुदेश, मरुदेस, मरुधरदेश, मरवण और मारवाड़ एक ही प्रांत के अनेक नाम हैं। शुद्ध मारवाड़ी जोधपुर, और उसके आस-पास बोली जाती है। कुछ मिश्रित रूपों में यह पूर्व में अजमेर-मेरवाड़ा, किशनगढ़ और मेवाड़ में, दक्षिण में सिरोही और पालमपुर तक, पश्चिम में जैसलमेर और सिंध के अमरकोट तक, एवं उत्तर में बीकानेर, जयपुर के उत्तरी भाग तथा पंजाब में हिसार - भिवानी के पूर्व तक बोली जाती है। इसकी कम से कम 12 उपबोलियाँ हैं। जिनमें बटकी, थली, बीकानेरी, बाँगड़ी, शेखावाटी, मेवाड़ी, खैराड़ी, सिरोही, गोड़वाड़ी, देवड़ावाटी उल्लेखनीय हैं। मारवाड़ी राजस्थानी की सबसे बड़ी बोली है। इसी के आधार पर एक सामान्य आदर्श राजस्थानी भाषा का विकास किया जा रहा है। मारवाड़ी में प्रचुर गद्य और पद्य साहित्य उपलब्ध है। वर्तमान में इसके बोलने वालों की संख्या 62 लाख के आस-पास है।

### 2. मालवी :

उज्जैन के आस-पास का क्षेत्र मालव नाम से जाना जाता है। यह क्षेत्र कई शताब्दियों से इतिहास प्रसिद्ध रहा है। मालव या मालवा क्षेत्र की बोली का नाम मालव है। शुद्ध मालवी उज्जैन, इन्दौर और देवास में बोली जाती है। इसके अन्तर्गत पश्चिम में प्रतापगढ़, रतलाम, दक्षिण - पश्चिम में इन्दौर, दक्षिण में भोपाल और होशंगाबाद का पश्चिम भाग तथा बैतुल क उत्तरी भाग, उत्तर पूर्व में गुना और उत्तर पश्चिम में नीमच, उत्तर में ग्वालियर, झालावाड़, टोंक तथा चित्तौड़गढ़ के कुछ भाग सम्मिलित हैं। इसके बोलने वालों की संख्या 55 लाख के ऊपर है।

## ढूँढारी या जयपुरी :

जयपुर 16वीं शती में बसाया गया था , जयपुर इसका नया नाम है, इसका स्थानीय नाम ढूँढारी है, क्योंकि इस क्षेत्र को ढूँढारी कहते हैं । इसकी पश्चिमी सीमा पर एक ढूँड या भीटा है, जहाँ प्राचीन युग में बड़े-बड़े यज्ञ होते थे । उसीके नाम पर इस प्रांत का नाम ढूँढाड पड़ा । ढूँढाडी को झाड़साही या जंगली बोली भी कहा जाता है । कुछ जयपुरी जयपुर नगर से 40 मील उत्तर की ओर, 50 मील पूर्व की ओर, और 60 मील दक्षिण तक बोली जाती है । बूँदी और कोटा में बोली जाने वाली हाड़ौती इसकी उपबोलियों में प्रमुख है । ढूँढारी बोलने वालों की संख्या 26 लाख के आस-पास है ।

## मेवाती :

‘में’ जाति के नाम पर इस क्षेत्र का नाम मेवात और बोली का नाम मेवाती पड़ा है । किन्तु बोली का क्षेत्र काफी बड़ा है । शुद्ध मेवाती अलवर, भरतपुर के उत्तर पश्चिम और गुड़गाँव(पंजाब) के दक्षिण पूर्व में बोली जाती है । इसकी एक सीमावर्ती उपबोली अहीरवाली है जिस पर हरियाणी का प्रभाव अधिक है किन्तु वर्तमान में मेवाती पर जयपुरी का प्रभाव अधिकाधिक बढ़ता जा रहा है ।

इन बोलियों का ध्वन्यात्मक एवं व्याकरणात्मक विशेषताएँ अगले खंड में दिया जाएगा । यहाँ प्रमुखतः साहित्य में प्रयुक्त रूप को दृष्टि में रखते हुए राजस्थानी की रूप रेखा प्रस्तुत की जा रही है । इसमें डिंगल समाहित है ।

ध्वनियाँ - |अ | आ | इ | ई | उ | ऊ | ए | ऐ | ओ | औ | पाँचों वर्ग | य | र | ल | व | श | ष | स | ह | व | न्ह | रह | ल्ह | ड | ढ | ळ | हैं | र् | दो हैं, एक दंत्योष्ठ्य और दूसरा द्वयोष्ठ्य । इनका अंतर कुछ स्थानों पर ध्वनिग्रामिक भी है । बाल हवा, बाल (दंत्योष्ठ्य) कहानी ।

स्वर मध्यम या अंत्य ल अनेक शब्दों में |ळ | हो जाता है । लिखने में ऋ | ष | हैं, किन्तु उच्चारण में नहीं । ष | का प्रयोग लिखने में प्रायः |ख | के लिए तद्भव में हुआ है । तत्सम शब्दों में यह |श | उच्चरित होता है । श | सामान्यतः केवल शिक्षितों की भाषा में है । कुछ क्षेत्रों में भविष्य रूप के ‘खईश’ (खायेगा) जैसे रूपों में यह सामान्य भाषा में भी है ।

वचन - दो हैं । बहुवचन बनाने के लिए | आँ |, जैसे- खेत - खेताँ, रात - राताँ, रोटी - रोटीयाँ, घोड़ी - घोड्याँ, तेली - तेल्याँ आदि । सर्वाधिक प्रचलित हैं । इसके अतिरिक्त (कवि - कवियाँ - वाँ), (बहू - बहुवाँ. भसावाँ) भी जोड़ते हैं । ओकारान्त का प्रायः | आ | (घोड़ो-घोड़ा) या आँ(घोड़ाँ) कर देते हैं । होर, होरो, होणो, होनो जैसे अतिरिक्त शब्द जोड़कर भी कुछ क्षेत्र में बहुवचन के रूप बनाए जाते हैं ।

## पहाड़ी हिन्दी :

आधुनिक आर्य भाषाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी का मत डॉ. ग्रियर्सन से कुछ भिन्न है। इनके अनुसार पहाड़ी भाषा की उत्पत्ति खश अपभ्रंश से हुई है। उत्तर हिमालय के निवासी किसी समय खश अथवा दर्द भाषा -भाषी थे। प्राकृत युग में राजस्थान के निवासी इधर जा बसे और उन्होंने वहाँ की बोलियों को प्रभावित किया। इसी के परिणाम स्वरूप पहाड़ी बोलियाँ अस्तित्व में आईं। पहाड़ी हिन्दी से तात्पर्य उस उपवर्ग से है जिसे ग्रियर्सन ने मध्य पहाड़ी कहा और जिसके अन्तर्गत गढ़वाली और कुमाऊनी बोलियाँ हैं।

## गढ़वाली :

‘माध्यमिक पहाड़ी गढ़वाली’ का क्षेत्र प्रधान रूप से गढ़वाल होने के कारण यह (गढ़वाली) नाम पड़ा। कूर्मांचल की पश्चिमी सीमा से जमुना तक का प्रदेश ‘केदारखंड’ के नाम से विख्यात था। इसके अन्य प्राचीन नाम इलावृत, तपोभूमि, उत्तराखंड आदि प्राप्त होते हैं। ठाकुरों की बावन गढ़ियों में विभक्त हो जाने के कारण इसका नाम गढ़वाल या बावनी पड़ा। अब पुनः इस क्षेत्र का नाम उत्तराखंड है। डॉ. ग्रियर्सन के भाषा सर्वेक्षण के अनुसार इसके बोलने वालों की संख्या 670824 के लगभग थी। यह गढ़वाल तथा इसके आस-पास टेहरी, अलमोड़ा, देहरादून का उत्तरी भाग, सहारनपुर का उत्तरी भाग, तथा विजनौर के उत्तरी भाग के कुछ भागों में बोली जाती है। गढ़वाली की बहुत सी उपबोलियाँ विकसित हो गई हैं, जिनमें प्रमुख श्रीनगरिया, राठी, लोहया, बधानी, दसौलया, मांझकुमैया, नागपुरिया, सलानी तथा टेहरी है। ‘श्रीनगरिया’ ‘गढ़वाली’ का परिनिष्ठित रूप है। गढ़वाली में साहित्य नहीं के बराबर है, किन्तु लोकसाहित्य प्रचुर मात्रा में है। इसके लिए नागरी लिपि का प्रयोग होता है। वर्तमान समय में थोड़ा बहुत गद्य-पद्य लिखा जा रहा है।

## ध्वन्यात्मक विशेषताएँ :

1. गढ़वाली में सामान्य ध्वनियाँ वही हैं जो हिन्दी में हैं। स्वरों में। अ।आ।इ।उ। ए।ऐ।ओ।औ।की स्थान, मात्रा, ओष्ठ - वृत्तता एवं संवृतता की दृष्टि से एकाधिक संध्वनियाँ हैं।
2. अ। ध्वनि शब्दान्त में प्रायः सुरक्षित है। स्वरों का अनुनासिक रूप भी प्रयुक्त होता है।
3. व्यंजन ध्वनि में। ल। ध्वनि विशेष है, जो परितिष्ठित हिन्दी में नहीं मिलती। गढ़वाली की। ल। ध्वनि बांगरू आदि के ल की तुलना में कोमल तथा। ल। के

अधिक निकट है ।

4. । च । वर्गीय ध्वनियाँ हिन्दी की तरह ही स्पर्श -संघर्षी हैं, किन्तु उनमें संघर्षत्व अधिक हैं । कुछ क्षेत्रों में । च । वर्ग तालव्य न होकर वत्स्य दंत्य या दंतमूलीय है ।
5. । क । वर्गीय ध्वनियाँ हिन्दी की तुलना में और पीछे से उच्चरित होती हैं । यह कण्ठ और काकल के बीच में बोली जाती है ।
6. । प । वर्ग के उच्चारण में होंठ कुछ आगे की ओर निकलते हैं ।
7. । ल । दन्ताग्र है ।। स-श ।, । न-ण ।, । ल-ळ । अलग-अलग ध्वनिग्राम हैं ।
8. अनुनासिकीकरण की प्रवृत्ति विशेषरूप से उल्लेखनीय है ।
9. हिन्दी की तुलना में प्रायः सभी महाप्राण ध्वनियों में महाप्राणत्व कम है । विशेषतः । ढ् । ध् । भ । आदि में ।

### **व्याकरणात्मक विशेषताएँ :**

1. संज्ञा, सर्वनाम के परसर्ग निम्नलिखित हैं -  
कर्त्ता- ०, न, ल, ओ ; कर्म-सम्प्रदान - ०, क, कूँ, कुणी, खुणी, कै, तै, सणी ।  
करण-अपादान -से, ते, ती, न, चे, चुलै, बितै ।  
सम्बन्ध - राजस्थानी का । रो, रे री, लो, के, की, के अतिरिक्त ओ, ए, ई  
अधिकरण - मुं, माँ, मंग, मंजे ।
2. सर्वनाम ब्रजभाषा से मिलते -जुलते हैं । संज्ञार्थक क्रिया देखणू, देखण, प्रेणार्थक क्रिया में । आ । वा । की जगह । आ । जैसे - दिखाँणु पूर्वकालिक क्रिया । मारिहु । मारिके ।  
भविष्यत् - । ल । रूप होता है ।  
शेष राजस्थानी से मिलते -जुलते हैं ।

### **कुमाऊँनी :**

कुमाऊँ का पुराना नाम कूर्माचल है । इसके अन्तर्गत नैनीताल , अल्मोड़ा और पिथौरागढ़ के जिले सम्मिलित हैं । इसकी मूल बोली खस थी जिस पर राजस्थानी और खड़ी बोली का प्रभाव बढ़ता ही रहा है । ग्रियर्सन ने इसकी 12 उपबोलियाँ गिनाई हैं । इसके बोलने वालों की संख्या ६ लाख के लगभग है । कुमाऊँनी पर दरद, खस, राजस्थानी, खड़ी बोली हिन्दी आदि भाषाओं के

अतिरिक्त किरात और भोट आदि तिब्बत -चीनी परिवार की भाषाओं का प्रभाव रहा है । लोक कवियों में गुमानी, पन्त और कृष्ण पाण्डेय प्रसिद्ध रहे हैं ।

1. इसके उच्चारण में ण, ल, राजस्थानी से, अल्पप्राणीकरण दरद और खड़ी बोली से लिए गए हैं । । ए । ओ । के स्थान पर । या । वा । जैसे च्याला(चेला- लड़का), ब्बाजा(बोझा) अवधी से मिलते -जुलते हैं ।
2. पुल्लिंग शब्द एकवचन खड़ी बोली की तरह आकारान्त न होकर राजस्थानी और ब्रजभाषा की तरह ओकारान्त होता है । जैसे - । वी को च्यालो केति गयो । (उसका लड़का कहाँ गया) ।  
सम्बन्ध । को । का । की । के अतिरिक्त । से । के लिए । थे । भी । राजस्थानी से आया है, जैसे । चेलि थें गौं को पत्ती पुच्छो । (लड़की से गाँव का पता पूछो ।)
3. में । मैं । पश्चिमी हिन्दी के समान है ।
4. । ने । के स्थान पर । ले । और । को । के स्थान पर । कणि । इस बोली की अपनी विशेषता है ।
5. सर्वनाम बहुत कुछ हिन्दी से मिलते -जुलते हैं ।
6. क्रिया रूपों में । न । वर्तमानकाल का, । ओ । आ । ई । भूतकाल का और । ल । भविष्यत् काल का द्योतक है । जैसे - । को जानै । (कौन जाता है) । आपणा खेत में गो । (अपने खेत में गया), ऊ आकी को बात समिझ जालो । (वह आप ही यह बात समझ जायेगा)
7. सहायक क्रिया । छ । होती है । इसी से भूतकालिक । छियो । (था) आदि रूप बनते हैं ।
8. कुमाऊँनी शब्दावली नाना ध्वन्यात्मक परिवर्तनों के कारण बड़ी विचित्र जान पड़ती है । व्यावहारिक शब्दों में अनार्य तत्वों के कारण एक नयापन अवश्य है, किन्तु सांस्कृतिक शब्दावली हिन्दी से ली जाती रही है ।

\*\*\*

## UNIT - III

### हिन्दी की बोलियाँ : इकाई की रूपरेखा

- 3.0 उद्देश्य
- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 बोलियाँ
  - 3.2.1 राजस्थानी - नामकरण । परिचय । व्याकरण  
सम्बन्धी विशेषताएँ । ध्वन्यात्मक विशेषताएँ
  - 3.2.2 ब्रज - नामकरण । परिचय । व्याकरण  
सम्बन्धी विशेषताएँ । ध्वन्यात्मक विशेषताएँ
  - 3.2.3. अवधी- नामकरण । परिचय । व्याकरण  
सम्बन्धी विशेषताएँ । ध्वन्यात्मक विशेषताएँ
  - 3.2.4. भोजपुरी- नामकरण । परिचय । व्याकरण  
सम्बन्धी विशेषताएँ । ध्वन्यात्मक विशेषताएँ



## UNIT - III

### हिन्दी की बोलियाँ

#### 3.0 उद्देश्य

इस खंड की तीसरी इकाई में मध्ययुगीन भारतीय भाषाओं के उद्भव एवं विकास तथा उनकी व्याकरणिक संरचना एवं ध्वन्यात्मक विशेषताओं का परिचय दिया गया है। इस इकाई में आप राजस्थानी, ब्रज, अवधी और भोजपुरी बोलियों के विकास का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- \* पूर्वी हिन्दी एवं पश्चिमी हिन्दी का अध्ययन कर सकेंगे।
- \* इन बोलियों के व्याकरणिक पक्ष का अध्ययन करके अन्य भाषाओं के साथ उसके अन्तर एवं तादात्म्य को समझ सकेंगे।
- \* ब्रज भाषा में प्रस्तुत साहित्य एवं साहित्यिकों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- \* राजस्थानी बोली में प्राप्त प्रचुर साहित्य एवं उसकी उपभाषाओं का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- \* अवधी में प्राप्त साहित्य एवं उनके साहित्यकारों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- \* भोजपुरी साहित्य के नामकरण की व्याख्या एवं उसके क्रिया रूपों की जानकारी प्राप्त करने के साथ-साथ उसमें उपलब्ध साहित्य एवं साहित्यकारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- \* इन बोलियों का अध्ययन करने के बाद आपको यह समझने में आसानी होगी कि किस तरह एक बोली अपने अतीत रूप को छोड़कर आगे बढ़ती हुई वर्तमान अवस्था को प्राप्त होती है और अपने पूर्ववर्ती एवं परवर्ती बोलियों की भाषागत विशेषताओं की व्याख्या कर सकेंगे।
- \* इकाई में दी गए सभी बोलियों का अध्ययन तथा उसकी परम्परा का निर्धारण कर सकेंगे।

### 3.1 प्रस्तावना :

हिन्दी की बोलियाँ नामक इस इकाई में पूर्वी हिन्दी एवं पश्चिमी हिन्दी की प्रमुख बोलियों का परिचय, उसकी व्याकरणिक एवं भाषागत विशेषताएँ तथा उसमें उपलब्ध साहित्य का परिचय दिया गया है। भारतीय साहित्य में हमें अधिकाधिक अध्ययन सामग्री ब्रज एवं अवधी के साहित्य में मिलती है जिसमें मुख्य रूप से पद्य का समावेश हुआ है। यदि हम ब्रज, अवधी, राजस्थानी एवं भोजपुरी भाषा का अध्ययन करें तो हमें इसमें प्रचुर साहित्य का भंडार मिलता है। इन बोलियों के प्रमुख कवि सूरदास, तुलसीदास, मलिक मोहम्मद जायसी, केशव, घनानन्द जैसे महान कवियों का अक्षय भंडार हमें भारतीय साहित्य में देखने को मिलता है।

हिन्दी प्रदेश की भाषा को ग्रियर्सन आदि विद्वानों ने दो भागों में विभाजित किया है। इस भेद का आधार दोनों वर्गों की भाषाओं का भौगोलिक और ऐतिहासिक अन्तर है। पूर्वी हिन्दी का क्षेत्र पश्चिमी हिन्दी और बिहारी के बीच का भू भाग है। डॉ. ग्रियर्सन ने भारतीय भाषाओं के सर्वेक्षण में पूर्वी हिन्दी के अन्तर्गत तीन प्रमुख बोलियों - अवधी, बघेली तथा छत्तीसगढ़ी का उल्लेख करते हुए टिप्पणी की है - “केवल जनसाधारण के कारण ही बघेली को अवधी से भिन्न रूप दिया गया है, अन्यथा बघेली का अवधी से कोई भिन्न रूप नहीं है। डॉ. बाबूराम सक्सेना भी पूर्वी हिन्दी के केवल दो मुख्य रूप - अवधी और छत्तीसगढ़ी मानते हैं। डॉ. उदयनारायण तिवारी के अनुसार - भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से अवधी और बघेली में कोई अन्तर नहीं है। उनकी मान्यता है - “वास्तव में बघेली और अवधी में बहुत कम अन्तर है और एक दृष्टि से इनको पृथक रखना भी उपयुक्त नहीं है। छत्तीसगढ़ी महाराष्ट्री के प्रभाव के कारण अवश्य पृथक बोली है अन्यथा इन तीनों विभाषाओं में अवधी ही एक सुसम्पन्न भाषा है।

ठीक इसी प्रकार पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत पाँच विभाषाएँ अथवा बोलियाँ हैं - 1) खड़ी बोली। 2) बाँगरू। 3) ब्रजभाषा। 4) कन्नौजी। 5) बुन्देली। इसमें खड़ी बोली और ब्रजभाषा में विपुल साहित्य मिलता है और इनका भाषा वैज्ञानिक महत्व भी है। डॉ. ग्रियर्सन के अनुसार पश्चिम में अम्बाला (पंजाब) से लेकर पूर्व में बनारस तक और उत्तर में नैनीताल की तहलटी से लेकर दक्षिण में बालाघाट (मध्यप्रदेश) तक हिन्दी की बोलियाँ बोली जाती हैं। इससे स्पष्ट है कि डॉ. ग्रियर्सन ने राजस्थानी बोली का हिन्दी से सम्बन्ध स्वीकार नहीं किया है। किन्तु वर्तमान समय के भाषा के पारिवारिक व आकृतिमूलक वर्गीकरण के साथ-साथ सांस्कृतिक वर्गीकरण को भी कम महत्वपूर्ण नहीं माना गया है और इस दृष्टि से राजस्थानी हिन्दी सांस्कृतिक वर्ग के अन्तर्गत आती है। आजकल इसे स्वतंत्र भाषा का दर्जा दिया गया है। राजस्थानी बोली की चार उपबोलियाँ हैं - मेवाती, मालवी, मारवाड़ी और जयपुरी। इस प्रकार भाषाशास्त्र की दृष्टि से अगर हम राजस्थानी को हिन्दी की बोली न भी मानें तो भी साहित्यिक दृष्टि से अवश्य राजस्थानी साहित्य की गणना हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत

होती है। हिन्दी के कुछ विद्वानों ने राजस्थानी भाषा को हिन्दी की उपभाषा सिद्ध करने के लिए कतिपय अन्य तत्वों जैसे उत्पत्ति, ध्वनि तथा व्याकरणिक संबंध की मान्यता को भी ढूँढ निकाला है। इन विचारकों के अनुसार यदि अर्धमागधी अपभ्रंश से उत्पन्न अवधी हिन्दी परिवार की भाषा बन सकती है तो नागर अपभ्रंश से उत्पन्न राजस्थानी बोली हिन्दी परिवार की भाषा क्यों नहीं बन सकती? राजस्थानी के भाषा शास्त्रीय अध्ययन के उपरान्त डॉ. श्यामसुन्दर दास की यह मान्यता है कि 'राजस्थानी भाषा पर गुजराती का प्रभाव पड़ा है। संज्ञाओं के कारक रूपों में यह गुजराती से बहुत मिलती है पश्चिमी हिन्दी से नहीं। राजस्थानी की विभक्तियाँ अलग हैं, जहाँ कहीं समानता है वहाँ गुजराती से अधिक है, पश्चिमी हिन्दी से कम है।' इस दृष्टि से देखा जाय तो राजस्थानी भाषा भाषाशास्त्र की दृष्टि से तो हिन्दी के क्षेत्र से अलग पड़ती है किन्तु साहित्यिक दृष्टि से अवश्य हिन्दी से सम्बद्ध हो जाती है। फिर भारतीय संविधान के निर्माताओं ने भी राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से राजस्थानी को हिन्दी की उपभाषा मान लिया है।

भोजपुरी बोली का प्रचार सबसे अधिक जनपद में रहा है। मातृभाषा के रूप में भोजपुरी बोलने वाले काव्य-चर्चा करते समय ब्रजभाषा और खड़ी बोली का ही प्रयोग करते हैं। इसकी भी तीन क्षेत्रीय बोलियाँ हैं, जिनमें 'नागपुरिया' का नाम उल्लेखनीय है। भोजपुरी के प्राचीन कवियों में संत कबीरदास, धरमदास, धरणीदास तथा शिवनारायण के नाम उल्लेखनीय हैं।

## 3.2 बोलियाँ

### 3.2.1 राजस्थानी :

राजस्थान प्रदेश की भाषा राजस्थानी है। आज यह हिन्दी की उपभाषा के रूप में जानी जाती है। इसका विकास शौरसेनी के नागर अपभ्रंश से हुआ है। इसका प्रमुख क्षेत्र राजस्थान है। पिंगल के अनुकरण पर राजस्थानी में 'डिंगल' काव्य की रचना हुई है। इसकी लिपि नागरी और महाजनी है। राजस्थानी को हिन्दी की उपभाषा मानने के पक्ष में विभिन्न विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। डॉ. ग्रियर्सन के अनुसार पश्चिम में अम्बाला (पंजाब) से लेकर पूर्व में बनारस तक और उत्तर में नैनीताल की तलहटी से लेकर दक्षिण में बालाघाट (मध्यप्रदेश) तक हिन्दी की बोलियाँ बोली जाती हैं। इससे स्पष्ट है कि डॉ. ग्रियर्सन ने राजस्थानी बोली का सम्बन्ध हिन्दी से नहीं माना है। वर्तमान समय की धार्मिक सांस्कृतिक, साहित्यिक और राजनैतिक परिस्थितियों ने हिन्दी भाषा को एक बहुत बड़े क्षेत्र में फैलने का अवसर दिया है। हिन्दी के कतिपय विद्वानों के अनुसार राजस्थानी के अन्तर्गत मारवाड़ी, जयपुरी, मालवी और मेवाती बोलियाँ तो हैं, किन्तु भाषाओं में उनका कोई स्थान नहीं है क्योंकि इनकी न कोई अपनी लिपि है और न ही साहित्यिक परंपरा और न ही इन्हें शासन द्वारा मान्यता प्राप्त है। पीढ़ियों से यहाँ के निवासियों की शिक्षा, शासन, साहित्य और पत्र-व्यवहार की

भाषा हिन्दी रही है। डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी राजस्थानी को हिन्दी के अन्तर्गत रखना अधिक समीचीन समझते हैं। इन्होंने अपनी पुस्तक 'राजस्थानी भाषा' में कहा है 'राजस्थानी बढ़ती रहे, पर हिन्दी से उसका छूटकारा कभी नहीं है।' कोलकाता में लोग राजस्थानी को 'मारवाड़ी' हिन्दी कहते हैं। डॉ. भोलानाथ तिवारी तो भाषा के आकृतिमूलक वर्गीकरण और पारिवारिक वर्गीकरण के अतिरिक्त सांस्कृतिक वर्गीकरण को कम महत्वपूर्ण नहीं माना है और इस दृष्टि से उन्होंने राजस्थानी, पहाड़ी, बिहारी को हिन्दी के सांस्कृतिक वर्ग के अन्तर्गत रखा है। हिन्दी के कुछ विद्वानों ने राजस्थानी को हिन्दी की उपभाषा सिद्ध करने के लिए कतिपय अन्य तत्वों उत्पत्ति, ध्वनि तथा व्याकरणिक सम्बन्ध की मान्यता को दूँढ निकाला है। इन विचारकों के अनुसार यदि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की उत्पत्ति पर विचार करें तो राजस्थानी का जन्म नागर अपभ्रंश से हुआ है। यहाँ यह विचारणीय है कि यदि अर्द्धमागधी अपभ्रंश से उत्पन्न अवधी हिन्दी परिवार की भाषा बन सकती है तो राजस्थानी क्यों नहीं बन सकती।

ध्वनि की दृष्टि से विचार किया जाय तो राजस्थानी में 'ण' ध्वनि के अतिरिक्त हिन्दी ध्वनियों से अन्य कोई पार्थक्य नहीं है।

आचार्य किशोरी दास बाजपेयी ने 'क' प्रत्यय को हिन्दी की बोलियों का परिचायक व्याकरणिक तथ्य स्वीकार किया है। उनके शब्दों में - "हिन्दी की सब बोलियाँ तद्वितीय प्रत्यय 'क' तथा 'के' विभक्ति की सूचना लिए हुए हैं और यही ऐसा तत्व है जो इन सब बोलियों को एक टोली में लाता है। तथा हिन्दी की दूसरी बोलियों या भाषाओं से इसकी व्यावृत्ति करता है।" राजस्थानी में इन 'का', 'के', 'की' परसर्गों का प्रयोग है। इस प्रत्यय के अभाव में ही मराठी, पंजाबी हिन्दी से पृथक होती है और इसी रूप में राजस्थानी, बिहारी हिन्दी की उपभाषाएँ सिद्ध होती हैं। राजस्थानी के भाषा शास्त्रीय अध्ययन के उपरान्त डॉ. श्यामसुन्दर दास इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि 'राजस्थानी भाषा पर गुजराती का प्रभाव पड़ा है। संज्ञाओं के कारक रूपों में यह गुजराती से बहुत मिलती है, पश्चिमी हिन्दी से नहीं। राजस्थानी की विभक्तियाँ अलग हैं, जहाँ कहीं समानता है वहाँ गुजराती से अधिक है, पश्चिमी हिन्दी से कम।' डॉ. दास का मत सर्वथा समीचीन प्रतीत होता है। क्योंकि राजस्थानी की उपभाषाएँ भाषा शास्त्र की दृष्टि से तो हिन्दी के क्षेत्र से पृथक पड़ती हैं किन्तु साहित्यिक दृष्टि से अवश्य हिन्दी से सम्बद्ध हो जाती हैं। भारतीय संविधान के निर्माताओं ने भी राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से राजस्थानी को हिन्दी की उपभाषा मान लिया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दी के विद्वानों ने उत्पत्ति, ध्वनि तथा रूपतत्वों की समानता के अतिरिक्त राजस्थान में नागरी लिपि के प्रयोग तथा भारतीय संविधान में हिन्दी की उपभाषा के रूप में इसकी स्थिति आदि के आधार पर राजस्थानी को हिन्दी की उपभाषा सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। साथ ही यह भी सर्वविदित है कि हिन्दी का आदिकालीन डिंगल -पिंगल

साहित्य राजस्थानी भाषा की देन है । हिन्दी साहित्य के इतिहासकार इस साहित्य को छोड़ने की प्रस्तुत नहीं हैं । डिंगल साहित्य हिन्दी से निकाल देने पर हिन्दी के साहित्य भंडार की सम्पन्नता को गहरा धक्का लगेगा । यही कारण है कि हिन्दी के विद्वानों का प्रयत्न राजस्थानी भाषा को हिन्दी में समाविष्ट करने का रहा है । साथ ही वहाँ के निवासियों द्वारा परम्परागत रूप से नागरी लिपि का प्रयोग तथा वहाँ के साहित्यकारों के उदारवादी दृष्टिकोण के कारण हिन्दी के विद्वानों को अपनी मान्यता सिद्ध करने में सहायता मिली है, परन्तु शास्त्रीय तथ्य इस मान्यता की पुष्टि नहीं करते ।

### राजस्थानी बोलियाँ :

‘राजस्थानी’ राजस्थान के भाषा रूपों के लिए ग्रियर्सन द्वारा प्रयुक्त एक सामूहिक नाम है । राजस्थानी का अर्थ है ‘राजस्थान’ का । पूरे राजस्थान या राजपूताना के लिए प्राचीन काल में किसी एक नाम का प्रयोग नहीं मिलता । या तो अलग-अलग राज्यों के लिए अलग-अलग नाम थे या फिर इस पूरे क्षेत्र के कुछ खण्डों के लिए नाम थे । डॉ. ग्रियर्सन ने राजस्थानी बोलियों को पाँच वर्गों में रखा है -

1. पश्चिमी राजस्थानी - इसका क्षेत्र जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर, उदयपुर आदि हैं । इस वर्ग की प्रमुख बोली मारवाड़ी तथा प्रमुख उपबोलियाँ दूटकी, भीली, बिकानेरी, बाँगड़ी, शेखावटी, मेवाड़ी, खैराड़ी, सिरोही, गोड़ाबाड़ी तथा देवडावाटी आदि है ।
2. उत्तरी-पूर्वी राजस्थानी - इसका क्षेत्र अलवर, भरतपुर तथा दिल्ली के दक्षिण गुड़गांव के आस-पास है । इसकी बोलियाँ अहीरबाटी तथा मेवाती हैं । राजस्थानी का यह रूप पश्चिमी हिन्दी से बहुत प्रभावित है ।
3. मध्य पूर्वीय राजस्थानी - इसका क्षेत्र जयपुर, कोटा तथा बूंदी है । ढूँढारी या जयपुरी, किशनगढ़ी तथा अजमेरी इसकी प्रमुख बोलियाँ हैं । इसकी उपबोलियाँ हैं - तोरावटी, राजवटी, चौरासी तथा नागरवाल आदि ।
4. दक्षिण-पूर्वी राजस्थानी - इसका क्षेत्र मालवा के आस-पास है । ‘मालवी’ इसकी प्रमुख बोली है ।
5. दक्षिणी राजस्थानी - इसका क्षेत्र निमाड़ के आस-पास है । इसकी प्रमुख बोली ‘नीमाड़ी’ है ।

## मारवाड़ी :

मरुभूमि, मरुदेश, मारुदेश, मरुधरदेश और मारवाड़ एक ही प्रांत के अलग-अलग नाम हैं। मारवाड़ी राजस्थान की सबसे बड़ी बोली है। वर्तमान में इसके बोलने वालों की संख्या ६२ लाख से कुछ अधिक हैं। राजस्थान की सबसे बड़ी बोली होने के कारण इसी के आधार पर एक सामान्य आदर्श साहित्यिक भाषा का विकास भाषा वैज्ञानिकों द्वारा किया जा रहा है। मारवाड़ी में प्रचुर गद्य और पद्य साहित्य उपलब्ध हैं।

शुद्ध मारवाड़ी जोधपुर और उसके आसपास बोली जाती है। कुछ मिश्रित रूपों में यह पश्चिम में जैसलमेर और सिंध के अमरकोट तक, पूर्व में अजमेर - मेरवाड़ा, किशनगढ़ और मेवाड़ में, दक्षिण में सिरोही और पालमपुर तक तथा उत्तर में बीकानेर, जयपुर के उत्तरी भाग तथा पंजाब में हिसार - भिवानी के पूर्व तक बोली जाती है।

मारवाड़ी के उच्चारण में दो क्लिक ध्वनियाँ विशेषतः विचारणीय हैं - ध और स। ध का उच्चारण द-ध के बीच में और स का उच्चारण स-ह के बीच में होता है और दोनों में श्वस थोड़ा भीतर की ओर लेना पड़ता है। जैसे धावो(पशु) और जास्यो में। स का उच्चारण कुछ-कुछ 'श' के समान होता है।

## व्याकरणगत विशेषताएँ -

1. करण -अपादान का परसर्ग - सूँ, ऊँ आदि।
2. अधिकरण का परसर्ग - में, मैं, माइ, माहै, माँय, आदि।
3. सम्बन्ध परसर्ग में गुजराती के नो, ना, नी अतिरिक्त हैं।
4. विशेषण की तुलनावस्था बताने के लिए 'सूँ' के अतिरिक्त 'करताँ' (अपेक्षाकृत) का प्रयोग पाया जाता है। जैसे - मोअन करताँ सोअन भलेसे है। (मोहन के अपेक्षा सोहन भला है)
5. सर्वनामों में रूप विविधता अधिक है। जैसे - 'मैं' के लिए हूँ, म्हँ, यह के लिए ओ, यो (स्त्री, आ, या); संबंधवाची शब्दों के लिए जो, जिको आदि
6. भविष्यत् काल में ग, स, ल, आदि रूपों के अतिरिक्त । है। रूप भी होता है।
7. सहायक क्रिया का 'ह्य' रूप भी समझने योग्य है - हमँ (हम हों) ह्यती(होती) ह्येउला(हूँगा) आदि।
8. वर्तमान कृदन्त के साथ रहणो के योग से नकारात्मक क्रिया बनती हैं।

जैसे -गाता रहणो (न गाना) आता रणो (नहीं आए) ।

9. सामान्य राजस्थानी के सभी लक्षण मारवाड़ी में पाए जाते हैं ।

### **मालवी :**

इसका केन्द्र मालवा प्रदेश का इन्दौर राज्य है । उज्जैन के आस पास का क्षेत्र मालव नाम से कई शताब्दियों से प्रसिद्ध रहा है । मालव या मालवा की बोली का नाम मालवी है । शुद्ध मालवी उज्जैन, इन्दौर और देवास में बोली जाती है । इसके अन्तर्गत पश्चिम में परताबगढ़, रतलाम, दक्षिण पश्चिम में इन्दौर, दक्षिण में भोपाल और होशंगाबाद का पश्चिमी भाग तथा बैतुल का उत्तरी भाग, उत्तर पूर्व में गूना और उत्तर पश्चिम में नीमच, उत्तर में ग्वालियर, झालाबाड़, टोंक तथा चित्तौड़गढ़ के कुछ भाग सम्मिलित हैं । मालवी बोलने वालों की संख्या 55 लाख से कुछ ज्यादा है । मालवी बुन्देली और मारवाड़ी के बीच की स्थिति है ।

### **इसकी व्याकरणगत विशेषताएँ -**

1. शुद्ध मालवी में ण नहीं बोला जाता ।
2. ड़ की अपेक्षा ड अधिक प्रचलित है ।
3. ऐ. औ की अपेक्षा ए, ओ बोलने की प्रवृत्ति अधिक प्रचलित है ।
4. संज्ञा -सर्वनाम के रूपान्तर में आदर्श राजस्थानी से कोई विशेष अन्तर नहीं है ।
5. परसर्गों में कर्ता में ने ; कर्म में के । खे । रे ; करण -अपादान में 'से, ती, मारे, संप्रदान में । दो ।,। को ।,। सारू ।,। कारणे ।,। वास्ते । सम्बन्ध में को । का । की । रो । रा । री के अतिरिक्त थाको । थाका । थाकी ; तथा अधिकरण में 'में' परसर्ग प्रयुक्त होता है ।
6. कुछ विशेष सार्वनामिक रूपों में के(कौन) । कणी ने (किसने) काँई । कँई । कैँ आदि हैं ।
7. संज्ञा बहुवचन में हर । होर । होरो । होनो । जुड़ता है । जैसे बयरा -हर (स्त्रियाँ) अजमान-हर (जजमान लोग) ।
8. क्रिया में सहायक क्रिया का भूतकालिक रूप थी । था । थो ; भविष्यत् प्रत्यय गो । गा । गी ; और पूर्वकालिक प्रत्यय 'ने' होता है । जैसे मारने - मारकर ।
9. सामान्य राजस्थानी के सभी लक्षण मालवी में पाए जाते हैं ।

## ढूँढाड़ी या जयपुरी :

यह राजस्थान के पूर्वी भाग में बोली जाती है । इसका मुख्य क्षेत्र जयपुर, कोटा और बूँदी है । चूँकि जयपुर शहर 16वीं शती में बसाया गया था, इसलिए जयपुरी नाम भी नया है । इस क्षेत्र को ढूँढार कहा जाता है इसलिए इसका स्थानीय नाम भी ढूँढारी है । ऐसा माना जाता है कि किसी युग में बड़े-बड़े यज्ञ हुए थे । उसी के नाम पर सारे प्रांत का नाम ढूँढाड़ी पड़ा । ढूँढाड़ी को झाड़साही या जंगली बोली भी कहा गया है । विशुद्ध जयपुरी जयपुर नगर के 60 मील दक्षिण 40 मील उत्तर और 50 मील पूर्व तक बोली जाती है । बूँदी और कोटा में बोली जाने वाली हाड़ौती इसकी उपबोलियों में प्रमुख है । अजमेरी भी इसकी एक उपबोली है । ढूँढाड़ी बोलने वालों की संख्या 36 लाख के लगभग है ।

## इसकी व्याकरणिक विशेषताएँ -

1. मारवाड़ी की तुलना में ढूँढारी में परसर्गों में कर्म -सम्प्रदान के नै । कै ; करण -अपादान के सूँ । सें ; सम्बन्ध के को । का । की ; और अधिकरण के मैं । ऊपर । मालै अतिरिक्त हैं ।
2. सर्वनामों में हूँ की अपेक्षा मैं ; मनै के अतिरिक्त मूँनै, , तनै की अपेक्षा तूँनै ; का प्रयोग होता है ।
3. एक वचन म्हारो, थारो ; बहुवचन म्हाँको, थँको ; का प्रयोग होता है ।
4. 'यह' के लिए पुलिंग यो, स्त्रीलिंग या, ई (यह) ऊँ (वह) जी(जो) से ईनै, ऊँकै, जीको आदि रूप उल्लेखनीय है ।
5. राजस्थानी के 'बो' से बनने वाले क्रिया रूप उच्चारण की दृष्टि से कुछ कठिन हैं । जैसे - देबो, लेबो आदि ।
6. देबो, लेबो का भूत कृदन्त दीयो, लीयो के अतिरिक्त दीनू, लीनू भी बनता है ।

## मेवाती :

जाति के नाम पर इस क्षेत्र का नाम मेवात और बोली का नाम मेवाती पड़ा । इस बोली का क्षेत्र काफी बड़ा है । शुद्ध मेवाती अलवर, भरतपुर के उत्तर-पश्चिम और गुड़गाँव (पंजाब) के दक्षिण -पूर्व में बोली जाती है । इसकी एक सीमावर्ती उपबोली अहीरवाटी है जिस पर हरियाणवी का प्रभाव अधिक है । अब मेवाती पर जयपुरी का प्रभाव अधिकाधिक बढ़ता जा रहा है । इस पर ब्रजभाषा का भी प्रभाव है ।



## इसकी व्याकरणिक विशेषताएँ -

1. मेवाती के परसर्गों में कर्त्ता-कर्म में नै, कर्म सम्प्रदान में कै ; सम्बन्ध में को, का, की और करण अपादान में सैं, तैं हैं ।
2. सर्वनाम हरियाणावी के समान हैं । हम-तम के स्थान पर हमा-तमा भी प्रयुक्त होते हैं ।
3. इसको उसको आदि के स्थान पर ऐंको, बैंको, झैंको, कैंहको भी प्राप्त होते हैं ।
4. क्रिया रूप राजस्थानी के ही हैं । अन्तर केवल इतना है कि हो, हा, ही के अतिरिक्त थो, थी, था भी प्रचलित है ।
5. अहीरवाटी में हरियाणी सूँ, सैं, से (हूँ, हैं, है) पाये जाते हैं ।
6. भविष्यत् काल में केवल 'ग' रूप प्राप्त होते हैं । जैसे चलूँगो, चलैगो आदि । ये रूप ब्रजभाषा के समान हैं ।

## राजस्थानी भाषा की ध्वनियाँ :

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ. ओ, औ तथा पांचों वर्ग य, र, ल, व, श, ष, स, ह, व. न्ह, र्ह, म्ह,, ल्ह, ड, ढ, ल, । 'व' दो हैं । एक दंत्योष्ठ और दूसरा द्वयोष्ठ्य । इसका अन्तर कुछ स्थानों पर ध्वनिग्राहिक भी है, जैसे- बात - (द्वयोष्ठ्य)= हवा, बात (दंत्योष्ठ) = कहानी । स्वर मध्यम या अत्यंत ल अनेक स्थानों में ळ हो जाता है । लिखते समय ऋ, ष है किन्तु उच्चारण में नहीं, ष का प्रयोग लिखने में प्रायः 'ख' के लिए होता है । ऐसा तद्भव में हुआ है । तत्सम शब्दों में यह 'श' उच्चरित होता है । 'श' वर्ण सामान्यतः सुशिक्षितों की भाषा में है । कुछ क्षेत्रों में भविष्य के 'सईश' (खायेगा) जैसे रूपों में यह सामान्य भाषा में भी व्यवहार में लाया जाता है ।

## वचन :

राजस्थानी में दो वचन हैं । बहु वचन बनाने के लिए 'आँ' जैसे -खेत -खेताँ, रात - राताँ, रोटी - रोटियाँ, घड़ी - घड़ियाँ, तेली - तेल्याँ ), सर्वाधिक प्रचलित प्रत्यय हैं । इसके अतिरिक्त याँ जैसे कवि -कवियाँ, वाँ जैसे बहु - बहुवाँ, भाखाँ भी जोड़ते हैं । ओकारान्त को प्रायः आ (घोड़ो-घोड़ा) या -आँ(घोड़ा -घोड़ाँ) भी कर देते हैं । होर, होरो, होणो, होनो जैसे अतिरिक्त शब्द जोड़कर भी कुछ क्षेत्रों में बहुवचन के रूप बनाए जाते हैं ।

### 3.2.2 ब्रजभाषा :

पश्चिमी हिन्दी की बोलियों के अध्ययन के लिए ब्रजभाषा कुंजी का काम करती है। एक ओर बुन्देली और कन्नौजी, दूसरी ओर केवल राजस्थानी बोलियाँ ही नहीं गुजराती तक और उत्तर में गढ़वाली और कुमाऊँनी की प्रकृति को ब्रजभाषा की जानकारी के बाद सरलता से समझा जा सकता है। खड़ी बोली और बाँगरू का मेल पंजाबी से ज्यादा है। शौरसेनी प्राकृत से उत्पन्न सभी बोलियों में ब्रजभाषा उसकी मुख्य उत्तराधिकारिणी है। यह ब्रज प्रदेश की भाषा है। ब्रज शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य में चारागाह या बाड़े के अर्थ में हुआ है। वर्तमान में मथुरा प्रदेश के आसपास के क्षेत्र को ब्रजमंडल कहा जाता है। लिंग्विस्टिक सर्वे में डॉ. ग्रियर्सन ने इसका एक और नाम अन्तर्वेदी दिया है अर्थात् गंगा- यमुना के बीच के प्रदेश की भाषा। इसके अन्य नाम हैं - ब्रजी, ब्रिज, ब्रिजकी, भाषामणि, माथूरि माथुरही, पुरुषोत्तम भाषा तथा नाग भाषा। कुछ लोग ब्रजबुलि को भी ब्रजभाषा समझते हैं पर यथार्थतः ब्रजभाषा का इससे कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। ब्रजबुलि बंगला का एक कृत्रिम रूप है और इस नाम का प्रयोग बंगला कवि ईश्वरचंद्र गुप्त द्वारा हुआ है। इसमें बंगला, मैथिली और ब्रज का मिश्रण है।

### ब्रजभाषा का क्षेत्र :

ब्रजभाषा के क्षेत्र में मथुरा, अलीगढ़, आगरा, बुलन्दशहर, एटा, मैनपुरी, बदायूँ तथा बरेली के जिले आते हैं। हरियाणा के गुड़गाँव जिले का पूर्वीभाग तथा राजस्थान के धौलपुर, भरतपुर, करौली एवं जयपुर जिले का पूर्वी भाग और मध्यप्रदेश के ग्वालियर जिले का पश्चिमी भाग भी ब्रजभाषा क्षेत्र के अन्तर्गत हैं। किन्तु विशुद्ध ब्रजभाषा मथुरा, अलीगढ़ और आगरा जिलों में बोली जाती है।

“इत बरहद उत सोन हद उत सूरसेन को गाम ।

ब्रज चौरासी कोल में मथुरा मंडल धाम ।”

अनुमानतः ब्रजभाषा बोलने वालों की संख्या एक करोड़ तीस लाख के लगभग है।

### ब्रजभाषा की प्रमुख बोलियाँ -

ब्रजभाषा की प्रमुख पांच बोलियाँ हैं -

क) नैनीताल की भुस्सा ।

ख) एटा, मैनपुरी, बदायूँ, तथा बरेली की अन्तर्वेदी ।

- ग) धौलपुर और पूर्वी जयपुर की डागी ।
- घ) गुड़गाँव और भरतपुर की मिश्रित ।
- ङ) करौली की जाटोवाटी ।

## ब्रजभाषा का विकास :

युग परिवर्तन के साथ-साथ जन-जीवन की मान्यताओं, विचारों तथा प्रवृत्तियों में परिवर्तन स्वाभाविक रूप से होता रहता है। भाषा पर भी युग परिवर्तन और जन जीवन के परिवर्तन का स्वाभाविक प्रभाव पड़ता है। इसमें कोई दो राय नहीं है। यही कारण है कि हिन्दी भाषा के मध्यकाल में आते ही इतनी परिवर्तित हो गई कि उसके स्वरूप की कतिपय धाराएँ भी निश्चित हो गईं, जिसमें ब्रजभाषा और अवधी भाषा को विशेष मान्यता प्राप्त हो गई थी। अवधी भाषा का विकास मुख्य रूप से प्रेममार्गी सूफी कवियों द्वारा हुआ और रामचरितमानस की रचना करके तुलसीदास ने अवधी भाषा को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया, किन्तु 17वीं शताब्दी के उपरान्त अवधी भाषा में और कोई महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना नहीं हुई। तुलसीदास 'कृत' विनयपत्रिका, कृष्ण गीतावली आदि रचनाओं में ब्रजभाषा ही प्रयुक्त है। आगे चलकर कृष्णभक्त कवियों ने मात्र ब्रजभाषा को ही अपनी रचनाओं में स्थान दिया।

ज्यों-ज्यों कृष्ण भक्ति का प्रचार होता गया, त्यों-त्यों ब्रजभाषा का महत्व भी बढ़ता गया। महात्मा सूरदास, नन्ददास, गोविन्दस्वामी तथा कृष्णदास आदि कवियों ने ब्रजभाषा को अधिकाधिक प्राणवंत और सौन्दर्यमयी बनाया। रसखान, रहीम आदि मुसलमान भक्त कवियों तथा बंगाल प्रदेश के कुछ साहित्यकारों पर भी ब्रजभाषा के माधुर्य और सौन्दर्य का विशेष प्रभाव पड़ा और उन्होंने भी अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए ब्रजभाषा को अपनाया। नाथों और संतों की बोलियों में ब्रजभाषा का व्यापक व्यवहार हुआ है। चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ब्रजभाषा का प्रभाव इतना व्यापक हो गया कि इसमें निरन्तर और स्वतंत्र साहित्य की रचना होने लगी, साथ ही इसने समस्त उत्तर भारत में काव्य भाषा का स्थान प्राप्त कर लिया। इसके साहित्यिक रूप में इतना निखार आ गया कि काफी दिनों तक यह काव्य भाषा के रूप में छाया रही। गुरुग्रन्थ साहिब में कुछ ऐसे कवियों की बोलियाँ संग्रहित हैं, जो ब्रज प्रदेश के बाहर के थे, परंतु ब्रजभाषा में लिखते रहे। इससे पता चलता है कि तब तक ब्रज की यह बोली अपने क्षेत्र से बाहर भी साहित्य का माध्यम बन चली थी और बोली मात्र न रह कर भाषा बन रही थी।

सूरदास और नन्ददास ने ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप देने में सबसे अधिक योगदान दिया। सूरदास भाषा के प्रायः सभी स्तरों तक पहुँचे। उनके काव्य में लोकभाषा भी है, विनय के पदों में

सीधी-सादी सामान्य भाषा भी , अवतारों की कथाओं में इतिवृत्तात्मक शैली भी, वात्सल्य और शृंगाररस के पदों में लालित्यपूर्ण साहित्यिक भाषा भी और दृष्टकूटों में कठिन -क्लिष्ट अलंकृत ब्रजभाषा भी है । शब्दों के प्रयोग में भी व्यापकता पायी जाती है । सिद्धांत निरूपण में और स्तुतियों में संस्कृत शब्द, ललित साहित्य में तद्भव आवश्यकतानुसार अरबी, फारसी, अवधी, राजस्थानी आदि भाषाओं के शब्द और भावानुकूल अनुकरणात्मक शब्द प्रयुक्त हुए हैं जिससे ब्रजभाषा समृद्ध हुई है । रीतिकालीन कवियों के हाथों भाषा का स्वरूप अलंकारों के बोझ से दब गया । फलस्वरूप भाषा कृत्रिम हो गई । विषय की संकीर्णता के साथ-साथ भाषा की व्यापकता और सामर्थ्य समाप्त हो गई । इससे ब्रजभाषा का बड़ा अहित हुआ । फिर भी रीतिकालीन कवियों में महाकवि बिहारी, देव, मतिराम, केशव, चिन्तामणि, घनानन्द, तथा सेनापति आदि ने ब्रजभाषा को खूब सजाया -सँवारा । भूषण ने उसमें बीर रस का पुट दिया । इस प्रकार शृंगार और वीर -दोनों विशिष्ट रसों से यह सिद्ध होती रही । आगे चलकर 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' आदि कृतियों के रूप में ब्रजभाषा के गद्य रूप में भी दर्शन हुए । ब्रजभाषा का सबसे सुन्दर रूप सूर के काव्य में दिखलाई पड़ता है जिसमें उसके विकास का इतिहास भी सुरक्षित एवं संरक्षित है ।

इस काल की भाषा के प्रारंभिक रूपों में क्रिया, सर्वनाम आदि के प्रयोग पर अपभ्रंश का अधिक प्रभाव रहा । विदेशी शब्दों का भी प्रयास समावेश होता रहा । घनानन्द के काल तक आते -आते ब्रजभाषा की मिश्रित शब्दावली प्रयाप्त विशुद्ध हो गई और क्रमशः अधिकाधिक निखरती, सजती, सँवरती हुई अपनी विकास- दिशा में आगे बढ़ती रही । साहित्यिक रचनाओं के अतिरिक्त ब्रजभाषा के लोक साहित्य का भी अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है ।

### **ब्रजभाषा की ध्वन्यात्मक विशेषताएँ :**

ब्रज की ध्वनि सम्बन्धी विशेषताओं में उल्लेखनीय यह है कि यह विभाषाओं की अपेक्षा सही रूप में पश्चिमी हिन्दी का प्रतिनिधित्व करती है । इसकी ध्वनात्मक विशेषताएँ निम्न लिखित हैं -

1. इसमें अपभ्रंशकालीन अन्य स्वरों के साथ ऐ -ओ ध्वनियाँ अधिक मिलती हैं । सामान्य हिन्दी के ऐ । ओ । मूल स्वरों की अपेक्षा ये कम विवृत हैं ।
2. इसमें अपभ्रंशकालीन अन्य व्यंजनों के अतिरिक्त रह, न्ह, म्ह तथा ल्ह ध्वनियाँ भी मिलती हैं ।
3. इसमें तीन सकारों - सू, षू, शू में से केवल सू मिलता है ।
4. इसमें ए -ओ के ह्रस्व रूपों का प्रयोग भी हुआ है ।

5. इसमें 'ऋ' के स्थान पर 'रि' अथवा 'ऽर' मिलते हैं ।
6. इसमें आदि और मध्यस्थ 'अ' के स्थान पर कभी-कभी 'इ' मिलता है जैसे - तस्य -तिस्स, तिसु, कपाट- कवाड़, किवाड़ ।
7. ब्रजभाषा में व के स्थान पर म का प्रयोग मिलता है - पावेंगे - पामेंगे, आवतु - आमतु ।
8. आधुनिक ब्रजभाषा में ण के स्थान पर न मिलता है । ण लिखे जाने पर भी उच्चारण में न जैसा हो जाता है , जैसे- प्रवीण - प्रवीन, वेणु - वेनु, चरण - चरन ।
9. हिन्दी की ड-ड़ - ल ध्वनियों के स्थान पर ब्रज में 'र' ध्वनि हो जाती है , जैसे - घड़ी - घरी, पड़ा - पर्यौ । उलझना - उरझत ।

### **व्याकरण सम्बन्धी विशेषताएँ :**

ब्रजभाषा की व्याकरण सम्बन्धी विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

1. खड़ी बोली हिन्दी की आकारान्त संज्ञाओं के स्थान पर ब्रजभाषा में ओकारान्त संज्ञाएँ मिलती हैं, जैसे - लड़का - लड़को । तिनका - तिनको । कारा - कारो आदि ।
2. प्राचीन ब्रजभाषा में कारकों के कुछ विभक्ति रूप मिल जाते हैं, जैसे- पूतहिं । बाँभनै । सपनै । जगति । द्वारै आदि में । किन्तु साधारणतया परसर्गों का प्रयोग अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के समान ही मिलता है । ब्रजभाषा में कर्ता - बहुवचन में न, नि । कर्म -एकवचन और बहुवचन में हि, हिं । करण -एकवचन में हि । सम्बन्ध एक वचन में ह तथा अधिकरण में हि, इ, ए विभक्ति प्रत्यय अवशिष्ट हैं, जैसे कर्ता - श्रवनन, दृगनि । कर्म - कैलासहिं, तिहाई । करण -ताहि । सम्बन्ध - तिन्ह । अधिकाण - तिनहिं आदि

### **ब्रजभाषा में निम्नलिखित परसर्गों का प्रयोग होता है -**

1. कर्ता - ने, नें, नै, नैं ।
2. कर्म - को, कौ, कै, कूँ, कु, कै, कें ।
3. करण - सौं, तन, त तैई ।
4. सम्प्रदान - कई,, ताई, हेत, लागे ।
5. अपादान - हुँतो, सै, सो, सों, तै, ते, तें ।

6. सम्बन्ध - कउ, का, के, की, कि, कै, को ।

7. अधिकरण - मांहि, मांझि, मे, माँ ।

अन्य परसर्ग - काज, लए, लगी, दिग, नाई, पाछै, ताई, लौं ।

बिना परसर्ग - के भी तिर्यक रूप विभक्त्यर्थ प्राप्त होता है -

जैसे - हाटनि, बाटनि, गलिन कहुँ कोउ चलि नहीं सकता ; पढ़ें एक चटसार में ।

3. विशेषण का प्रयोग खड़ी बोली के समान होता है, केवल पुल्लिङ्ग एकवचन में रूप का अन्तर है ; जैसे दूजो, दूजै, उलटौ, उलटै, उलटी आदि । संख्यावाचक शब्दों में द्वै, तीनि, सोरह ; पहिलो, दूजो, या तियो ; दोउ या उमै, तीन्यौ उद्धरणीय हैं ।

4. सर्वनामों में हाँ (मैं) और इसके तिर्यक रूप 'मो' का ध्यान रहने से शेष रूपों को खड़ी बोली के अनुसार समझा जा सकता है । साहित्य में विकल्प से अपभ्रंश के कुछ रूप जैसे - मोहिं, हमहिं, जाहि, जासु, ताहि, तासु, काहि, रावरो (आप) भी विचारणीय है ।

सर्वनामों की तालिका नीचे दी जाती है -

क) उत्तम पुरुष - मैं, हौं, मो(को) मोहि, मुझकौ, मेरौ, हम, हमन, हमैं, हमहिं, हमारौ ।

ख) मध्यम पुरुष - तू, तूँ, तें, तो(कौ) --- तोहि, तुजकौ, तेरौ, तुम, तुमहि, तुम्हैं, तुम्हारौ, तिहारौ ।

ग) अन्य पुरुष - वौ, वह, वा,(कौ) - वाहि, वे, वै, उन, उन्हें ;

ए, यह, या (कौ) .... याहि, ये , इन, इन्हें ।

सो, तौन, ताहि, तिन्हे, तिन कौ ... आदि

घ) संबंधवाचक - जो, जे, जौ, जौन, जाहि, जा, जिन ।

ङ) प्रश्न वाचक - को, कौन, का, काहि, कहा (क्या) ।

अनिश्चयवाचक - कोई, कोऊ, काहू, कछू ।

5. ब्रजभाषा के अव्यय - अजौं, पुनि, अजहूँ, सरदाई, त्द्यौ, इत, इतै, तहँ, जित, कतहूँ, तौ, जौ, लौ ; सामुहें (सामने) अनत (अन्यत्र) जिमि (ज्यों), किमि (कैसे), मनौ (माने), मनु -जनु, वर, भल, नहिं, नहीं, नाहीं, नाहिन, नू, ना, जनि, केतो, नैकू, हू (भी), ही, और, औ, कै, तौ, जौ, पै, ता, तै ।

6. ब्रजभाषा में प्रेरणार्थक क्रिया बनाने के लिए अ, आ, आउ, व आदि प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है। जैसे - चलिइऔ, चलाउ, चलाइ है, चलाइँगो, चलबाऊ, चलबाओ।
7. क्रिया रूप में सहायक क्रिया के वर्तमान काल के रूप - हौं (खड़ी बोली में हूँ) है। (खड़ी बोली में 'हो') विशिष्ट है। भूतकाल में हो, हतो, हुतो, तो, (था के लिए) हे, हते, हुते, ते (थे के लिए) ही, हती, हुती, ती (थी के लिए) और हीं, हतीं, हुतीं, तीं (थीं के लिए) आते हैं।  
भयो, भयौ, भो(हुआ), भए (हुए), भई (हुई) तथा भई (हुई) पूर्वी हिन्दी से मिलते - जुलते हैं।  
संभाव्यार्थ में हौऊँ (होऊँ या हूँ), होहिं (हों) होय या होई (हो उल्लेखनीय है। भविष्यत् निश्चयार्थ में है है, हैंहैं आदि ब्रजभाषा के अपने रूप हैं।
8. वर्तमान कालिक कृदन्त में त-त प्रत्यय लगाए जाते हैं। भूतकालिक कृदन्त में ओ, ऐ-यो प्रत्यय लगाए जाते हैं तथा भविष्यत् कालिक कृदन्त में गा-गे-गी के अतिरिक्त है - हैं प्रत्यय लगाए जाते हैं, जैसे - खेलत, पढ़ो, गयो, गए पढ़गा, जैहै, जैहो आदि।
9. क्रियात्मक संज्ञाएँ 'व' तथा 'न' लगाकर बनती हैं, जैसे - खेलनो, देखन, देखिबे, चलिबो, बोलिबौ, हँसिबौ आदि।

राजस्थानी भाषा डिंगल के अनुकरण पर ब्रजभाषा का एक नाम पिंगल भी पड़ा। पिंगल मुनि छन्दशास्त्र के रचयिता आचार्य थे। उनके नाम पर ही छन्दशास्त्र 'पिंगल' कहलाया और छन्दों की दृष्टि से व्यवस्थित भाषा को पिंगल के नाम से जाना गया।

### 3.2.3 अवधी :

मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा में प्राकृत भाषा के विभिन्न क्षेत्रीय नामकरण हो चुके थे। शौरसेनी और मागधी प्राकृतों के मध्यक्षेत्र में जो प्राकृत प्रचलित थी, उसे अर्द्धमागधी प्राकृत कहा गया, क्योंकि उसमें शौरसेनी प्राकृत तथा मागधी प्राकृत-दोनों के लक्षणों का सम्मिश्रण था। प्राकृत भाषा काल के पश्चात अर्द्धमागधी-प्राकृत के क्षेत्र में अर्द्धमागधी अपभ्रंश भाषा का विकास हुआ और जब अपभ्रंश से आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का विकास हुआ तब इसी अर्द्धमागधी अपभ्रंश से पूर्वी हिन्दी की बोलियाँ विकसित हुईं।

अर्द्धमागधी से विकसित पूर्वी हिन्दी विभाषा वर्ग की उपभाषाओं में अवधी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है। राम जन्मभूमि अयोध्या के निकटवर्ती क्षेत्र की बोली 'अवधी' रही होगी।

परन्तु अब इसके नाम के अनुसार इसकी सीमा नहीं रही । अब इस भाषा को व्यवहार में लाने वाले विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए हैं । वैज्ञानिक विश्लेषण की दृष्टि से अवधी पूर्वी हिन्दी की एक बोली मात्र है । परन्तु इस विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए समाज के विचार -विनिमय का माध्यम होने के कारण इसे मध्य प्रांत की भाषा भी कहा जा सकता है । कुछ विद्वान इसे 'कौशली' एवं 'वैसवाड़ी' बोली भी कहते हैं । अयोध्या का प्रदेश कोसल राज्य की बोली को 'कोसली' या अवधी के रूप में मान लिया जाय तो बघेली के साथ-साथ छत्तीसगढ़ी भी इसके बाहुपाश में बंध जायेगी, परन्तु जब से मानस की भाषा का प्रचार हुआ है तब से अवधी नाम भी जन प्रचलित हो गया । ग्रियर्सन ने अपने सर्वे के भाग छह पृष्ठ नौ पर अवधी को 'बैसवाड़ी' भी बताया है । परन्तु यह तो अवध प्रदेश के एक क्षेत्र विशेष की बोली है । इसलिए बैसवाड़ी नाम भी ठीक नहीं है । अवधी से तात्पर्य अवध की भाषा से कदापि नहीं है । इस नगर के इस भाषा -क्षेत्र का केन्द्रस्थाल होने के कारण ही उसे यह नाम मिला है । अवधी भाषा की सीमाएँ पश्चिम में - पश्चिमी हिन्दी की कनौजी और बुन्देली से टकराती है तो पूरब में भोजपुरी से । शुद्ध रूप में इसका प्रचलन लखनऊ, उन्नाव, रायबरेली, सीतापुर, खीरी, फैजाबाद, गोंडा, बहराइच, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, बाराबांकी आदि में प्रचलित है । हरदोई इसका क्षेत्र नहीं है । इसमें अवधी का प्रभाव बहुत अधिक है । इनके अतिरिक्त इलाहाबाद, फतहपुर, मिर्जापुर, जौनपुर, आदि के कुछ भागों में भी अवधी बोली जाती है । पर इन जिलों में अवधी का मिश्रित रूप ही भरा है । बिहार प्रान्त के मुसलमानों की यह व्यावहारिक बोली है । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अवध प्रदेश के लोग देश के बड़े-बड़े शहरों में बस गए । और वहाँ की बोली में भी अवधी के तत्वों का प्रभाव दिखाई पड़ रहा है । बघेली का क्षेत्र मिलाकर इसका क्षेत्र और भी अधिक विस्तृत हो जाता है ।

अवधी की उत्तरी सीमा पर नेपाल की बोलियाँ हैं । पूरब में भोजपुरी, दक्षिण में मराठी तथा पश्चिम में पश्चिमी हिन्दी है । इसके बोलने वालों की संख्या लगभग दो करोड़ है ।

अवधी शब्द का शाब्दिक अर्थ है अवध का या अवध संबंधी, परन्तु साहित्य में इसका अर्थ अवध प्रदेश में बोली जाने वाली भाषा से ही है । भारतीय इतिहास और संस्कृति में अयोध्या, इसके राज्य और राजवंशों का विशेष महत्वपूर्ण स्थान रहा है । मुसलमानों के शासन में भी यह प्रदेश शक्तिसम्पन्न रहा । अंग्रेजी शासन काल में भी इस प्रदेश की भाषा को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँची । अवधी की उत्पत्ति के संबंध में आचार्य शुक्ल का मत है - "अपभ्रंश या प्राकृत -काल की काव्य भाषा के उदाहरणों में आजकल की भिन्न-भिन्न बोलियों के मुख्य -मुख्य रूपों के बीज या अंकुर दिखा दिए गए हैं ।" डॉ. नामवर सिंह अपनी पुस्तक 'हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग' में लिखते हैं - "ब्रजभाषा का प्रारंभिक इतिहास शौरसेनी अपभ्रंश से सम्बद्ध किया जा सकता है, परन्तु अवधी के किसी साहित्य अपभ्रंश का पता नहीं चलता ।" अवध प्रांत मगध और शूरसेन के



बीच में होने से इसे दोनों की भाषा सम्बन्धी विशेषताओं से युक्त समझा जाता है । डॉ. ग्रियर्सन ने अवधी का जन्म अर्द्धभागधी अपभ्रंश से ही माना है । जगन्नाथदास रत्नाकर ने अवधी को शौरसेनी के अन्तर्गत माना है । डॉ. सक्सेना ने 'इवल्यूशन ऑफ अवधी' पुस्तक के पृष्ठ सात पर लिखा है 'अवधी से अर्द्धभागधी भाषागत विभिन्नताओं के कारण बहुत दूर है, परंतु पालि से पर्याप्त साम्य और नैकट्य प्रतीत होती है ।' उपर्युक्त सभी मतों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि डॉ. शुक्ल ने ही अवधी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में निष्पक्ष दृष्टि से सोचा है ।

### अवधी का साहित्य :

अवधी के विकास को तीन कालों में बाँटा जा सकता है -

- क) 10वीं शती के आरंभ से 14 वीं शती तक - इसे निर्माण काल भी कहा जाता है ।
- ख) 14वीं शती से 16वीं शती तक - इसे मध्यकाल भी कहा जाता है ।
- ग) 16वीं शती से वर्तमान काल तक - इसे आधुनिक काल कहा जाता है ।

अवधी के प्राचीनतम रूपों के बीज तो दसवीं शती के प्रारंभ से भी पूर्व मिलने लगे थे । पिपरहवा तथा सारनाथ आदि के अभिलेख इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं, किन्तु इनमें अवधी की भाषागत प्रवृत्तियों की कुछ जानकारी नहीं मिलती । क्योंकि साहित्य में भाषा का प्रयोग समाज में प्रयोग के बहुत बाद होता है । अवहट्ट की सभी रचनाओं में अवधी का प्रारंभिक रूप दिखाई देते हैं । अवधी का सीधा सम्बन्ध अर्द्धभागधी प्राकृत और इसी नाम से कल्पित अपभ्रंश से जोड़ा जाता है । कौशली का उल्लेख आठवीं शती का ग्रंथ 'कुवलयमाला' में हुआ है । 'उक्तव्यक्ति प्रकाण' में कुछ उदाहरण दिये गये हैं और उन्हें 'कोसली' तथा 'अपभ्रष्ट' कहा गया है । 'प्राकृत पैंगलम्' में भी प्राचीन अवधी का रूप उसके छन्दों में देखे जा सकते हैं , जैसे -

पंडव बंसहि जन्म धरिजै । सम्पन्न अजिअ धम्मक बिज्जै ॥

सोउ जुहुहिर संकट पावा । देवक लिक्खिअ केण मेटावा ॥

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने प्राकृत व्याकरण में बहुत से उदाहरण ऐसे दिए हैं जो प्राचीन अवधी पर आधारित हैं - जैसे -

जसु केरअ हुँकारउएँ

जिवहिं मज्झै एझ

केहि लातेण ।

अवहट्ट की सभी रचनाओं में प्राचीन अवधी के रूप मिलते हैं ।

चौदहवीं शती के उत्तरार्ध तक की अवधी की भाषागत एवं व्याकरणगत प्रकृति बहुत अधिक स्पष्ट नहीं है। उस काल में हिन्दी की बोलियों में बहुत अधिक अन्तर नहीं था। मध्यकाल तक आते-आते अवधी का स्वतंत्र विकास होने लगा था। साहित्यिक स्तर पर यह अन्तर बहुत अधिक नहीं था। अवधी अवहट्ट या अपभ्रंश से पूर्ण रूप से अलग नहीं हो गई थी। इसका कारण यह भी हो सकता है कि कोई भाषा बोलचाल में भले ही न रही हो, किन्तु साहित्य में उसका व्यवहार एक दो शताब्दी तक तो चलता ही रहता है।

मध्यकालीन अवधी का रूप मुल्लादाऊद की रचना 'लोरकहा' या चंदायन (1360ई.) में दिखलाई पड़ता है। इसके बाद लालचदास का हरिचरित, सूरजदास का रामजन्म, ईश्वरदास का 'सत्यवती -कथा', भरत-मिलाप और अंगपैज' कुतुबन का 'मृगावती' और मलिक मोहम्मद जायसी के 'पद्मावत', 'अखरावट' आदि प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। इन कवियों ने बोलचाल की सीधी-सादी अवधी का प्रयोग किया है, जिसमें लद्भव शब्द सबसे अधिक हैं। शुद्ध तत्सम बहुत कम हैं। अरबी-फारसी के शब्द प्रसंगवश आये हैं। कही-कहीं फारसी शैली भी अपनाई गई है। जायसी ने तो फारसी का एक पूरा पदबंध ही प्रयुक्त कर दिया है - 'सिर ता पाई' संज्ञारूपों की कभी कोई व्यवस्था नहीं आ पाई थी। कही परसर्गों का लोप है, कहीं सर्वनामों का। कहीं क्रियाओं का और कहीं-कहीं अव्ययों का। पुराने परसर्गों में जो बाद में नहीं रहे, सेंती (से), कहँ। काँ (को) और - ऐ(ने) उल्लेखनीय हैं। - 'हि' प्रायः सभी परसर्गों के लिए प्रयुक्त हुआ है।

16वीं शती में आलम और उसमान, 18वीं शती में नूरमुहम्मद और शेखनिसार, 19वीं शती में अलीशाह तथा बीसवीं शती में ख्वाजा अहमद आदि सूफी कवियों ने जायसी की भाषा का अनुसरण किया। समयानुसार अवधी में जो परिवर्तन हुए वे स्पष्टतः लक्षित होते हैं, परन्तु शैली में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। फिर जायसी की भाषा में जो कलात्मकता, प्रवाहमयता दिखलाई पड़ती है परवर्ती कवियों की भाषा में नहीं दिखलाई पड़ती। डॉ. भोलानाथ तिवारी कुतुबन और उसके पूर्व की भाषा को पुरानी अवधी और जायसी के बाद की भाषा को परवर्ती अवधी नाम देते हैं।

1600ई. के बाद की अवधी का रूप छेमकरन के 'कृष्णचरितामृत', कासिम शाह के 'हंस-जवाहर', नूर मुहम्मद की 'इन्द्रावती' तथा ख्वाजा अहमद की 'नूरजहाँ' आदि पुस्तकों में सुरक्षित है।

साहित्यिक हिन्दी के विकास में तुलसीदास का विशेष स्थान है। वे संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। उन्होंने अपनी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों और संस्कृत के अवधीकृत शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग किया, फलस्वरूप भावों की अभिव्यक्ति में विविधता के साथ-साथ सटीकता आई और उसे साहित्यिक स्वरूप प्राप्त हुआ। तुलसीदास ने कहीं-कहीं लोक भाषा का प्रयोग अवश्य किया है किन्तु सामान्य रूप से उनकी अवधी शिष्ट, भावप्रधान और प्रौढ़ है।

तुलसी की अवधी में राजस्थानी, ब्रजभाषा, अरबी-फारसी के शब्द और प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में हैं। जिससे भाषा की सामर्थ्य बढ़ गई। तुलसी की भाषा -शैली का अनुकरण प्रायः सभी राम-कथाकारों ने किया है। परंतु तुलसी की भाषा में जो प्रांजलता और साहित्यिकता दिखाई पड़ती है, वह धीरे-धीरे समाप्त होने लगी। तुलसी की भाषा प्राचीनताओं से पूर्णतया कटी नहीं, चाहे इस समय तक आते-आते सूफियों के-से बहुत से प्रयोग समाप्त होते दिखाई देते हैं।

आगे चलकर बलभद्र प्रसाद दीक्षित, वंशीधर शुक्ल, चंद्रभूषण द्विवेदी (रमईकाका), दयाशंकर दीक्षित 'देहाती' ब्रजनन्दन, शिवदुलारे त्रिपाठी आदि ने अवधी के स्तर और प्रयोग को बढ़ाने का महत्वपूर्ण कार्य किया। आकाशवाणी के देहाती कार्यक्रमों में इसका अधिकाधिक प्रयोग होने के कारण भाषा में और अधिक निखार आया है।

अवधी एक जीवन्त भाषा है और यह आज भी विकास के पथ पर अग्रसर है। साथ ही उसमें आज भी परिवर्तन हो रहा है। आधुनिककाल में बोलचाल की अवधी खड़ी बोली से प्रभावित हुई।

### **अवधी की ध्वन्यात्मक विशेषताएँ :**

अवधी की ध्वन्यात्मक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

1. अवधी में हिन्दी की सभी स्वर ध्वनियाँ हैं। इसमें ए, ओ का ह्रस्व रूप भी मिलता है जो खड़ी बोली हिन्दी में नहीं मिलता। जैसे - एतना, कहत, केहि, सोहती।
2. 'अ' अर्द्ध संवृत है। काव्य में छन्दों की गणना से सिद्ध होता है कि शब्दान्त 'अ' का उच्चारण होता था। यद्यपि आज ऐसे शब्द व्यंजनान्त बोले जाते हैं, जैसे - नखत, ऊख(जायसी), मन, हिय, काज(तुलसी), अचरज, रात, जीभ(नूरमुहम्मद) आदि।
3. अवधी में ऐ-औ को अई-अउ लिखने तथा बोलने की प्रवृत्ति है - जैसे - जैसे को जइसे। औरत को अउरत।
4. अवधी में य-व श्रुतियों का अभाव मिलता है जैसे - इआ, उआ, स्यार या सियार के स्थान पर सिआर। करिये - करिअ। छुवत - छूअत। ग्वाल - गुआव आदि।
5. ह्रस्व ए, ओ (जैसे - बेटवा, लोटवा में) दीर्घ ए, ओ के अतिरिक्त पाए जाते हैं, यद्यपि लिखाई में दोनों का रूप एक ही रखा गया है।
6. ण के स्थान पर न ध्वनि मिलती है जैसे गुन(गुण)। लक्ष्मन (लक्ष्मण) आदि। संस्कृत के शब्दों में 'ण' लिखा जाता रहा है। किन्तु वर्तमान में उसका उच्चारण ङ की तरह करते हैं, जैसे गौड़ का गुँड।

7. श । ष । का उच्चारण प्रयत्न करने पर भी बहुत से लोग कर नहीं पाते ; इसलिए संस्कार । स । का ही पड़ गया जैसे - रिसि (ऋषि), विस्वामित्र (विश्वामित्र) । भूसंड(भूषण) आदि ।
8. साहित्य में तत्सम और अर्द्ध तत्सम शब्दों में । श । ष का प्रयोग मिलता है, जैसे - श्रुतकीर्ति, देश, भूषण ; किन्तु (देषि) आदि शब्दों से लगता है कि । ष । का प्रयोग । ख । के लिए होता था और ख उच्चारण व्यापक रहा होगा ।
9. । व । को व्यंजन रूप में । ब । और स्वर रूप में । उ । ओ । करके बोलते हैं । जैसे-बाहन - ब्याकुल, उकील, ओकिल, हरदेउ । इसी प्रकार । य । का व्यंजन - रूप उच्चारण । ज । और स्वर रूप उच्चारण । ए । जैसा होता है । नासिक्य ध्वनि के बाद । ड । ढ । उच्चरित होते हैं ; किन्तु साधारणतः शब्द के आरंभ में । ड । ढ । पाए जाते हैं, बीच में इनकी सहध्वनियाँ । ड़ । ढ़ ही मिलती हैं ।
10. अवधी में । ल् । के स्थान पर । र् । की प्रवृत्ति मिलती है जैसे - मूसल - मूसर । फल - फर आदि ।

### व्याकरण सम्बन्धी विशेषताएँ :

अवधी भाषा की व्याकरण सम्बन्धी विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

1. संज्ञा शब्दों के तीन -तीन रूप मिलते हैं - जैसे पुल्लिंग - घोर, घोरवा, घोरौना । स्त्रीलिंग - बेटी, बिटिया, बिटइवा । किन्तु साहित्य में तीसरा रूप प्रायः नहीं मिलता ।
2. - वा । -इआ । वाले रूप व्यक्तिवाचक और विदेशी शब्दों तक की बनावट में प्रयुक्त होते हैं, जैसे- जगदीसवा । रजिस्टरवा । जगबइया । पिसिलिया ।
3. अवधी में बहुवचन रूप खड़ी बोली की तरह बनते हैं , जैसे - सपन से सपने । पत्थर से पत्थर । रिसि से रिसि । बात से बातें । कभी-कभी बहुवचन के लिए एकवचन भी प्रयुक्त हो जाता है । जैसे - लरिका जात रहिन । असीस से असीसी खड़ी बोली के लिए अपरिचित रूप है । सामान्य रूप से एकवचन से बहुवचन बनाने के लिए । एँ । प्रत्यय लगाया जाता है ।
4. तिर्यक रूप एकवचन में वही मूल रूप रहता है अथवा - हिं । -इं । प्रत्यय जुड़ते हैं ; बहुवचन में -न-न्ह, न्हि आदि प्रत्यय लगते हैं, जैसे- लोगन, जान, मुनिन्ह कीर्ति गाई ।

5. स्त्री प्रत्यय अवधी और खड़ी बोली के लगभग एक से हैं , किन्तु खड़ी बोली का - न । -इल । -आइन अवधी में -नि । इनि । आइनि । होता है - जैसे मालिनि, नाउनि, पाण्डिताइनि आदि । मौसा के लिए मउसिया भी प्रचलित है ।
6. इसमें परसर्गों का प्रयोग निम्न प्रकार से होता है -
- क) कर्ता - खड़ी बोली का । ने । परसर्ग पूर्वी हिन्दी में नहीं है ।
- ख) कर्म- सम्प्रदान - का, क, कौ तथा साहित्यिक अवधी में । कहूँ । भी है ।
- ग) करण, अपादन - से । सेनी । सेन । साहित्यिक अवधी में सउँ । सौँ । तें । (रतन तें, केलि सौँ), सेति , हुंत आदि ।
- घ) सम्प्रदान - बरे । बदे । कट्याँ ।
- ङ) सम्बन्ध - के । कर । केर । क. । की । कै । स्त्रीलिंग)  
जैसे - गाड़े के साथी । दई कर नाउँ । गोसाईं केर । ओहि के पानि । बारी की नाई ।
- च) अधिकरण - में । म । पर । साहित्य में महुँ, महैं, माँहा, माँझ आदि का भी प्रयोग होता है ।  
साहित्यिक अवधी में बिना परसर्गों के भी सभी अर्थों में प्रयोग मिल जाते हैं, जैसे गुनहि मनु राता (इस उदाहरण में अधिकरण परसर्ग लुप्त है) सोनै साजा (करण लुप्त), मैं चरित संक्षेपहि कहा( कर्म लुप्त)
- छ) अन्य परसर्ग - संग, लागि, पाँहि, पास, ताँई, बीच, लई ।
7. अवधी में विशेषण प्रायः मूल में अकारान्त (अ व्यंजनान्त) होते हैं जैसे - नील । भल । बड़ । खोट । घोर । मोर । हमार । केकर आदि । स्त्रीलिंग संज्ञाओं के रहते हुए इन विशेषणों के साथ -इ, या - ई प्रत्यय लगता है, जैसे- नीकी । मीठी । आपनि । घनि । ओकरी । मोरी । कई प्रयोगों में लिंग परिवर्तन नहीं होता जैसे - नीक, बात, खोट, चाल आदि । बहुवचन में केवल पुल्लिंग में विकल्प से परिवर्तन होता है और ए प्रत्यय जुड़ता है जैसे - दुई दीपक उजियारे ।
8. अवधी में सहायक क्रिया के वर्तमान कालिक रूप के लिए - आरे, बारे, है, भहै का प्रयोग होता है । भूतकालिक रूप के लिए - भए, रहे का तथा भविष्यकालिक रूप के लिए भए, रहं का तथा भविष्यत् कालिक क्रिया रूप के लिए । ब, बई, उ, हिं प्रत्ययों का प्रयोग होता है ।

अवधी की एक प्रमुख बोली बैसवाड़ी में आहि और आय भी पाए जाते हैं । सहायक क्रिया के रूप इस प्रकार होंगे -

एकवचन - बाटचउँ । बाटस । बाटइ । अथवा अहेउँ । अहस । अहै ।

बहुवचन - बाटी । बाटिव । बाटँ । अथवा अही । अहिय । अहँ ।

9. संज्ञार्थक क्रिया प्रायः -ब - रूप होती है, जैसे- भूलब- (भूलना), देखब(देखना), करब(करना), देखिबे का (देखने को) अथवा खाए क(खाने को)

वर्तमान कालिक कृदन्त- देखते । देखित । करत ;

भूत कालिक कृदन्त - देखा । करा । पावा । भया(हुआ) ;

पूर्वकालिक कृदन्त - देखिके । करिके ।

साहित्य में प्राप्त निम्नलिखित कृदन्तीय रूप उल्लेखनीय हैं - सिसति न राति, पाइत भोगू, देखियत; नारद जानेउ, रथ समेत रवि थाकेउ ।

भविष्यत्काल में -ह- तथा -ब रूप प्राप्त होता है जैसे देखब, करब, देखिहँ । वर्तमान अवधी में -ह - रूप लुप्त प्रायः है ।

10. प्रेरणार्थक क्रिया 'आब' से बनती है जैसे सुनावहिं ; किन्तु पूर्व और पश्चिम के रूप भी साहित्य में मिल जाते हैं, जैसे - मिलं से मेलाए, मिट से मेटे तथा बैठे से बैठारे ।

अवधी एक जीवित भाषा है और वह आज भी विकास के पथ पर अग्रसर है, साथ ही उसमें आज भी परिवर्तन हो रहा है । मध्यकाल में उसमें अरबी-फारसी शब्द आए हैं तो आधुनिक काल में बोलचाल की अवधी खड़ी बोली से प्रभावित हुई है ।

### 3.2.4 भोजपुरी :

डॉ. ग्रियर्सन ने पश्चिमी मागधी बोलियों का बिहारी नामकरण किया है । बिहारी से डॉ. ग्रियर्सन का तात्पर्य उस भाषा से है जिसकी मगही, मैथिली तथा भोजपुरी तीन प्रमुख बोलियाँ हैं । इससे स्पष्ट है कि बिहार राज्य की कोई एक विशेष बोली नहीं है । बिहारी की इन उपभाषाओं की उत्पत्ति मागधी प्राकृत तथा अपभ्रंश से हुई है । यह प्राकृत मूलतः उन आर्यों की भाषा थी जिसे हार्नेली तथा डॉ. ग्रियर्सन ने बाहरी आर्यों के नाम से अभिहित किया है । डॉ. ग्रियर्सन के अनुसार अत्यन्त प्राचीन काल में मागधी का प्रसार उत्तरी भारत में भी था । परन्तु कालान्तर में शौरसेनी के प्रभाव के कारण मागधी दक्षिण तथा पूरब की ओर फैल गई ।

राजाभोज के वंशजों ने मल्ल जनपद में आकर नया राज्य स्थापित किया और अपनी

राजधानी का नाम भोजपुर रखा । उसी नगर के नाम पर प्रदेश का नाम भी भोजपुर पड़ गया और उसकी बोली भोजपुरी कहलायी । यद्यपि उस नगर का वैभव नष्ट हो गया फिर भी इस नाम के दो गाँव छोटका भोजपुर और बड़का भोजपुर - शाहाबाद जिले में उसकी स्मृति को संजोये हुए हैं । इस क्षेत्र के अन्तर्गत उत्तरप्रदेश में बनारस, गाजियाबाद, बलिया, गोरखपुर, देवरिया, आजमगढ़ के पूरे जिले और मिर्जापुर, जौनपुर तथा बस्ती के कुछ भाग एवं बिहार में शाहाबाद और सारन(छपरा) के पूरे जिले, और चम्पारन, राँची तथा पलामु के कुछ भाग सम्मिलित हैं । भोजपुरी हिन्दी प्रदेश की सबसे बड़ी बोली है । इसके बोलने वालों की संख्या लगभग दो करोड़ पचहत्तर लाख है । भोजपुरी के प्राचीन कवियों में संत कबीरदास, धरमदाद, धरणीदास, शिवनारायण के नाम उल्लेखनीय हैं । आधुनिककाल में कुछ नाटक, कहानी और कविता संग्रह प्रकाशित हुए हैं । लोककवियों में भिखारी और ठाकुर प्रसिद्ध हैं । ठाकुर का 'विदेशिया' अत्यंत लोकप्रिय गीति नाटक है । भोजपुरी सिनेमा चित्रपट का माध्यम भी बनी है ।

भोजपुरी का यह क्षेत्र प्राचीन काल से ही संस्कृत का केन्द्र रहा है । साथ ही हिन्दी का भी इस बोली में साहित्य सृजन बहुत मात्रा में हुआ है । मातृभाषा के रूप में भोजपुरी बोलने वाले काव्य चर्चा करते समय ब्रजभाषा और खड़ी बोली का मुँह देखते हैं । इसकी तीन क्षेत्रीय बोलियाँ हैं, जिनमें 'नागपुरिया' का नाम उल्लेखनीय है ।

## भोजपुरी की ध्वन्यात्मक विशेषताएँ :

भोजपुरी की निम्नलिखित ध्वन्यात्मक विशेषताएँ हैं -

1. भोजपुरी में शब्द के मध्य में आने वाले । र । का लोप हो जाता है, जैसे - लइका (अवधी में लरिका), धइ (अवधी में धरि), कई(करि) आदि ।
2. न्द । न्ध । के स्थान पर क्रमशः । न । न्ह । जैसे सुन्नर - सुन्दर । चान(चान्द) ।, बूनि(बून्दि) ।, बान्ह(बान्ध) । कान्हा(कान्धा) । होता है ।
3. म्ब । म्म । के स्थान पर क्रमशः । म । म्ह । होता है, जैसे - ताम्मा(ताम्बा), सम्हार(सम्भाल) । खम्हा(खंभा) । आदि ।
4. संगीतात्मक स्वाघात भोजपुरी की विशेषता है ।

## भोजपुरी की व्याकरण सम्बन्धी विशेषताएँ :

1. भोजपुरी की स्त्रीलिंग संज्ञाएँ प्रायः इकारान्त या ईकारान्त होती हैं जैसे नातिनि(नातिन), बहिनि(बहिन), भूखि(भूख) । आगि(आग) । के अतिरिक्त अँगुठी । हरदी । छेरी । (बकरी) आदि रूप तो है ही ।
2. बहुवचन में संज्ञा अपरिवर्तित रहती है । अधिक स्पष्टता अपेक्षित हो तो 'लोग' या 'लोगन' शब्द जोड़ दिया जाता है ।
3. तिर्यक रूप -न से होता है । जैसे -ब्रजभाषा या अवधि में हम-तुम का बहुवचन हमनी - हमनी का । तुहनीका । होता है ।
4. परसर्ग अवधी से मिलते हैं । कर्म सम्प्रदान में अतिरिक्त परसर्ग । ला । के । खातिर । करण में । ले । ते, और अधिकरण में खड़ी बोली की तरह मिलता है ।
5. क्रिया पदों में । ल । की प्रधानता मागधी प्रभाव के कारण है । 'ल' वर्तमान, भूत और संज्ञायर्थक क्रिया में प्रयुक्त होता है । जैसे- खाइल(खाया), खाला(खाता) ।
6. आदर सूचक और हीनता सूचक क्रिया पदों में भी भेद पाया जाता है -  
क्रियारूप -निम्न प्रकार से बनते हैं -  
वर्तमान - हम चलीं । तोहिनी का चलउ । रउआँ चलीं । उ चलसु । उहाँ का चली । भविष्यत् - हम देखवि । तोहनी का देखब । रउआँ देखवि । उ चलि हैं । उहाँ का देखबि ।  
भूत - हम देखलौं । तोहनी का देखल । रउआँ देखलीं ।  
क्रियार्थक संज्ञा - देखल ।  
वर्तमान कालिक कृदन्त - देखत, देखित ।  
भूत कालिक कृदन्त - देख -ल् । देखलस । आदि ।

\*\*\*